नई पीढ़ी के लिए नया दृष्टिकोण

धर्म

आखिर क्या है ?

पूज्य श्री ललितप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म

आखिर क्या है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म आखिर क्या है

कर्म • बंधन • मुक्ति या एक अमूल्य धरोहर ?

कर्म, धर्म, सत्य, साधना और लेश्या विज्ञान
जैसे विषयों पर स्पष्ट राह दिखाती एक
प्यारी सी पुस्तक

महोपाध्याय
ललितप्रभ सागर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म आखिर क्या है?

श्री ललितप्रभ

प्रकाशन वर्ष : मार्च, 2012

प्रकाशक : श्री जितयशा फाउंडेशन

बी-7, अनुकम्पा द्वितीय, एम. आई. रोड, जयपुर (राज.)

आशीष : गणिवर श्री महिमाप्रभसागर जी म.

मुद्रक : भारत प्रेस, जोधपुर

मूल्य : 30/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व स्वर

'धर्म, आखिर क्या है?' यह बहुत ही विकट प्रश्न है। समय-समय पर इस रहस्यमय सवाल के जवाब दिए जाते रहे हैं, फिर भी यह अनुत्तरित ही रहा। भगवान महावीर ने भी इस रहस्य पर से पर्दा उठाया और उनसे जो वचन निःसृत हुए, वे मानव-जीवन के लिए अमूल्य धरोहर हैं। उनके वचन समयातीत हैं या कहें सदा वर्तमान हैं। उनकी जीवन-दृष्टि अद्‌भुत है। महावीर उस मार्ग के अध्येता हैं, जहाँ से मनुष्य अपनी काराओं से मुक्त हो सकता है।

महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी ने महावीर के सूत्रों पर अमृत प्रवचन दिये हैं, जिनका चिंतन-मनन और अनुसरण कर मानव दुःख-मुक्त होकर धर्म-पथ पर अग्रसर हो सकता है। जीवन की वर्तमान त्रासदियों से उबरने के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ किसी तट का काम करता है।

पूज्य गुरुवर कहते हैं कि आज सम्पन्नता में भी इतनी विपन्नता है कि कहीं प्रसन्नता दिखाई ही नहीं देती, ऐसा क्यों है? इसका समाधान प्रस्तुत पुस्तक में मिलेगा कि संसार अध्रुव, अशाश्वत एवं दुःख-बहुल सपना है और सपने कभी सत्य नहीं होते। फिर भी मनुष्य क्षणिक सुख के लिए चिरकालिक दुःख स्वीकार कर लेता है। हमें अपनी दुष्पूर वासनाओं से ऊपर उठना होगा, तभी जीवन सुख और सत्य को उपलब्ध हो सकेगा। मनुष्य को अपने मिथ्यात्व की कारा को काटना होगा।

पूज्यश्री का कथन है कि ये संदेश किसी तंत्र का हिस्सा नहीं हैं, न ही कोई उपदेश हैं। ये वे वचन हैं, ऐसे जीवन-संवाद हैं कि हमारे भीतर सोया हुआ शौर्य, सिंहत्व जाग जाए, अन्तःकरण में छिपी हुई आभा, दिव्यता की परख हो सके और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपनी यात्रा शिखर की ओर आरम्भ हो जाए। और यह यात्रा ध्यान-साधना के मार्ग से गुजरती है। सत्य का उदय स्वयं के मौन से उपलब्ध होता है। सत्य का कोई उत्तर नहीं होता, उसकी केवल अनुभूति है। सत्य में तो सारे गुण समाहित हैं। जीवन, जगत और अध्यात्म का प्रथम और अन्तिम सोपान सत्य है।

धर्म के सम्बन्ध में गुरुवरश्री का कहना है कि धर्म तो खोज है। धर्म वह यात्रा है जहाँ व्यक्ति किसी लीक पर नहीं चलता। अपना रास्ता खुद खोजता है। वे बार-बार कहते हैं धर्म परम्परा नहीं है, धर्म मनुष्य का जीवन है। जीवन का पवित्र कर्मों में निमज्जित होना ही धर्म है। महावीर के सूत्र धर्म की सुगंध है, जहाँ व्यक्ति आत्मचेता होकर स्वाध्याय और ज्ञान के मार्ग का अनुसरण करता है। उनके सूत्र जागरण के सूत्र हैं। वे कहते हैं धार्मिक जागा हुआ श्रेष्ठ है और अधार्मिक सोया हुआ। इन्हीं गूढ़ सूत्रों को गुरुवर ने अपनी सहज-सरल और बोधगम्य शैली में हमारे सामने प्रकट किया है।

पूज्यश्री ने इन प्रवचनों में ज्ञान की वह सरस गंगा अवतरित की है, जिसमें अवगाहन कर हम कृत-कृत्य हो जाते हैं। यहाँ तक कि वे ज्ञानी को भी परिभाषित कर देते हैं। वह जीवन में किसी प्रकार की हिंसा न करे, आत्म- हिंसा भी नहीं। उनकी दृष्टि जीवन-विज्ञान से जुड़ी है। उन्होंने मनुष्य-जीवन का निकट से अध्ययन किया हैं। उसी का परिणाम है कि उनके दिए गए दृष्टांत चेतना को झिंझोड़ देते हैं। उन्होंने महावीर के माध्यम से जीवन को विधायक रूप से देखने का अवसर दिया है। साधना की धरा पर ध्यान के पुष्प खिलाए हैं। धर्म हमारे जीवन की रोशनी बने, प्रेरणा बने, सुख-शांतिपूर्वक जीवन का आधार बने। बस, यही है धर्म पर दिये गये संदेशों का मर्म।

पूज्यश्री ललितप्रभ जी ने सचमुच वह बयार चलाई है जिससे जीवन पुष्पित और सुगंधित हो उठा है। वे स्वयं सत्य के खोजी हैं और उसी सत्य को शब्दों में अभिव्यक्त करने का प्रयास है--'धर्म आखिर क्या है?'

आइए, हम इन प्रवचनों में अवगाहन कर स्वयं को कृत-कृत्य करें। कदम-दर-कदम आगे चलने से ही मंजिल मिलती है। पहला कदम ठीक से उठ जाए तो कण्टकाकीर्ण पथ भी सुगम हो जाता है। यह पुस्तक धर्म-प्रेमियों को आन्दोलित करेगी और सत्य-धर्म में रुचि जाग्रत करेगी, ऐसा विश्वास है।

अहोभाव भरे अशेष प्रणाम।

'मीरा'

(श्रीमती लता भंडारी)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

1.	मनुष्य दुःखी क्यों है ?	...	1
2.	काटें, मिथ्यात्व की कारा	...	9
3.	सत्य : एक समग्र धर्म	...	15
4.	धर्म, फिर से समझें एक बार	...	23
5.	धार्मिक जगे, अधार्मिक सोए	...	34
6.	कर्म : बंधन और मुक्ति	...	45
7.	ज्ञानी होने की सार्थकता	...	56
8.	तप का ध्येय पहचानें	...	63
9.	समझें, गृहस्थ के दायित्व	...	78
10.	साधना की सच्ची कसौटी	...	87
11.	मुक्ति का मूल मार्ग : ध्यान	...	99
12.	कृष्ण लेश्या का तिलिस्म	...	115
13.	लेश्याओं के पार धर्म का जगत	...	125
14.	परमात्म-साक्षात्कार की पहल	...	138

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म मानवता की मुंडेर पर मोहब्बत का जलता हुआ चिराग है। मंदिर और मस्जिदों को लेकर झगड़े करने की बजाए धरती पर प्रेम के मंदिर, मोहब्बत की मस्जिदें, स्नेह के गुरुद्वारे और प्यार के गिरजे बनाए जाने चाहिए। हमें धार्मिक कट्टरता का त्याग करते हुए धार्मिक सौहार्द का वातावरण निर्मित करना चाहिए। धार्मिक कट्टरता का उन्माद भी विचित्र है। किसी गली से ताजिया नहीं गुजर सकता और किसी गली से गणेशजी की शोभायात्रा। पर ताजुब्ब की बात है कि दोनों ही गलियों से नगरपालिका का कचरे का ट्रेक्टर तो आराम से गुजर ही रहा है ना!

ललितप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य दुःखी क्यों है ?

एक दिन एक संत किसी सम्पन्न व्यक्ति के यहाँ पहुँचा। उस सेठ के चेहरे पर मायूसी छाई हुई थी। संत ने संपन्नता के साथ उदासी देखी तो उससे रहा न गया। वह इस उदासी का कारण पूछ बैठा, 'क्या किसी गहरे दुःख से ग्रसित हो या व्यापार-व्यवसाय में कुछ नुकसान हो गया है ?' व्यक्ति ने निःसांस छोड़ी और कहने लगा, 'संतप्रवर, मैं नगर का सबसे सम्पन्न व्यक्ति हूँ और व्यापार-व्यवसाय भी अच्छा चल रहा है। मैंने लेखा-जोखा निकाला कि मेरे पास इतना कुछ है कि छः-छः पीढ़ियाँ आराम से जीवन-यापन कर सकती हैं।' संत ने साश्चर्य पूछा, 'फिर चिन्ता किस बात की है ?' सम्पन्न व्यक्ति का जवाब था, 'मैं यही सोच कर चिंतित हूँ कि मेरी सातवीं पीढ़ी क्या खाएगी ?'

संत ठहाके लगाकर हँस पड़ा। व्यक्ति संत की हँसी को सुनकर चौंका। उसने हँसी का कारण जानना चाहा, तो संत ने कहा, 'हँसी आई तुम्हारी नादानी पर। सातवीं पीढ़ी, जो अभी है ही नहीं, उसके लिए वर्तमान को चिंता में गालना, यही है तुम्हारे दुःखी होने का कारण। तुम वर्तमान की सुध लो। तुम्हारी यह सुधी ही तुम्हें सुखमय करेगी।' जीवन की यह दृष्टि ही उसे सुखमय कर गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह आज की नहीं, कल की चिंता में स्वयं को दुःखी कर रहा है। मनुष्य के सुख और दुःख का निमित्त मनुष्य स्वयं ही है। उसे बाहर से न सुख मिलता है न दुःख। सुख-दुःख व्यक्ति की अपनी ही प्रतिछवि है।

पत्नी से, धन से, संपन्नता से, भौतिक साधनों से बाह्य सुख ही मिल सकता है। अंतस् में कोई दुःख की क्षीण रेखा भी हो तो क्या बाह्य साधन वास्तव में सुखी कर पाएँगे ? चिंतित व्यक्ति को सुस्वादिष्ट व्यंजनों में भी कोई स्वाद नहीं आता और आनंदित अवस्था में साधारण भोजन भी रसयुक्त हो जाता है। हमारे भीतर के तनाव, चिंता, मूर्च्छा और लालसा ही दुःख के कारण बनते हैं। परिणामतः हम ऐशो-आराम में भी दुःखी हो सकते हैं और साधन-विहीनता में भी सुखी। सुखी केवल वही है जो स्वयं में रत है और अपनी मस्ती में आनंदित।

हमारे यहाँ संत को फकीर भी कहते हैं अर्थात् जो फिकर का फाका करे वह फकीर; जो फिक्र से बेफिक्र हो गया वही फकीर। आज वे फकीर कहाँ रहे ! आज की फकीर-जमात भी सामाजिक व्यवस्थाओं की, ट्रस्टों की, आश्रमों की, अन्य संचालित गतिविधियों की, अपने शिष्यों की चिंता में मसरूफ है। मस्ती तो चली गई, फिक्र के धागे बँध गए, फिर भी कहते हैं कि फकीर हैं !

आज सम्पन्नता के अंदर इतनी विपन्नता है कि कहीं प्रसन्नता दिखाई ही नहीं देती है। सच्चाई तो यह है कि जो जितना अधिक सम्पन्न है, वह उतना ही अधिक दुःखी। वैसे भी अधिक धन दुःख ही लाता है। हम देख भी रहे हैं कि जो अति संपन्न हैं, वे बीमारियों से ग्रस्त हैं; अच्छे-से-अच्छे भोजन और पकवान उपलब्ध हैं, लेकिन शरीर खाने की इजाजत नहीं देता। अमीरों में वैवाहिक जीवन सामान्य नहीं रह पाता, आए दिन तलाक की खबरें आती रहती हैं। वे मस्तिष्क और हृदय संबंधी रोगों से ग्रस्त रहते हैं क्योंकि वे हर वक्त तनाव और चिंता से घिरे रहते हैं। संपन्नता उन्हें भौतिक सुविधाएँ तो उपलब्ध करा सकती हैं, लेकिन जीवन का आनन्द और मस्ती नहीं दिला सकती। जीवन की खुमारी जीवन से ही आती है। वह तो अपने ही बनाए मकड़जाल में उलझा है, जिसमें वह न जी पाता है और न ही बाहर निकल पाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैंने अपने जीवन में ऐसे व्यक्तियों को देखा है जो पुत्र-जन्म पर थाली बजवाते हैं, लेकिन वही पुत्र जब जवान हो जाता है, तो दुःख के भँवर में गोते खाते नजर आते हैं। उनका वह आह्लाद उस समय विषाद में बदल जाता है, जब पुत्र उन पर हाथ उठाने से भी बाज नहीं आता, अपशब्दों का प्रयोग करता है। उस पर भी मजेदारी यह कि उस स्थिति से बाहर भी नहीं निकलना चाहते कि नहीं, यह तो नहीं हो सकता। घर कैसे छोड़ें ? भगवान कहते हैं, यही मूर्च्छा है।

आज के सूत्रों में हम यही देखेंगे कि भगवान कह रहे हैं कि वे कौन-सी स्थितियाँ हैं, जहाँ जन्म भी दुःख है; बचपन, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, बुढ़ापा और मृत्यु भी दुःख है। इस दुःख का कारण क्या है और इसका निवारण, मुक्त होने का उपाय क्या है ? सूत्र है—

अधुवे असासयम्मि संसारम्मि दुक्ख पउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाऽहं दुग्गइं न गच्छेज्जा।।

अध्रुव, अशाश्वत और दुःख-बहुल संसार में मानव की यही सबसे बड़ी कमजोरी है कि वह जन्म लेने के पश्चात् असार को ही सार समझने लगता है। जैसे धान के छिलके असार हैं, वैसे ही संसार असार है। भगवान ने कहा अध्रुव यानी यहाँ पर ध्रौव्य कुछ भी नहीं है। तुमने हर चीज को ध्रुव मान लिया है। यहाँ तक कि तुम अपने नाम को भी ध्रुव समझते हो, लेकिन अक्षरों की बदलाहट से नाम भी और अर्थ भी बदल जाते हैं। उत्पाद और व्यय सृष्टि का नियम है। यहाँ ध्रुव केवल चेतन तत्त्व है। नाम किसी का शाश्वत नहीं हो सकता। आज तुम्हारी उम्र चालीस वर्ष है। क्या बताओगे कि पचास वर्ष पूर्व तुम क्या थे ? क्या वही जो आज हो ? पचास वर्ष बाद तुम क्या होओगे ? कितना ध्रौव्य और कितनी शाश्वतता ! सब क्षणिक है। सब परिवर्तनशील है।

तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जिस स्थान पर आज तुम बैठे हो, संभव है वह कभी कब्रिस्तान या श्मशान रहा हो। आज कब्रों पर इमारतें निर्मित हो गई हैं। इन्हें देखकर तुम्हें जग शाश्वत मालूम होता है। क्या ध्रुव और कैसी शाश्वतता ! रात में तुम पड़ोसियों से गप्पें लगाकर सोए थे और सुबह तुम्हारे ही पुत्र पड़ोसियों को सूचना देते हैं कि तुम दुनिया में नहीं रहे। वह आश्चर्य में डूब जाता है कि रात में तो हमने बातचीत की थी, और अभी..... ? रात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और दिन में सबकुछ समाप्त हो गया। तुम चाहे जितनी व्यवस्थाएँ जमाओ, कितना भी संग्रह करो, लेकिन अगले कल के बारे में कुछ तय नहीं कहा जा सकता।

पुरानी बात है। अपनी यात्रा के दौरान हम क्षत्रियकुंड ग्राम पहुँचे। इतिहासवेत्ताओं ने घोषित किया कि यह वही स्थान है जहाँ सिद्धार्थ ने शासन किया था और यहीं भगवान महावीर का भी जन्म हुआ था। लेकिन आज वहाँ खंडहरों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता जमींदोज हो चुकी है। क्या था और क्या हो गया और हम यह भी नहीं जानते कि आगे क्या होगा ? यह जग तो एक धर्मशाला है, सराय है। आज तुम हो, कल तुम्हारी जगह दूसरा होगा। यहाँ सब अध्रुव और अशाश्वत है। यहाँ तो जन्म दुःख है और जीवन भी दुःख है, लेकिन हमने इस दुःख को ही सुख मान लिया है। किसी सुखी दिखाई देने वाले व्यक्ति के अन्तर्मन में झाँकें तो पता चलेगा वहाँ दुःख की ही परछाइयाँ डोल रही हैं।

एक दिन की बात है, मैं आहारचर्या के लिए जा रहा था कि रास्ते में शवयात्रा दिखाई दी। साथ में चलने वाले 'रामनाम सत्य है, सत्य बोलो...' कहते हुए जा रहे थे। वहीं सड़क के किनारे कुछ बच्चे खेल रहे थे। वे भी उसी सुर में गुनगुनाने लगे। जब शवयात्रा आगे चली गई तो मैंने सुना कि वे बच्चे कह रहे थे, 'राम नाम सत है, मुर्दा बड़ा मस्त है।' मैं चौंक गया, ये बच्चे जीवन का सत्य दोहरा रहे थे। उन्होंने उस व्यक्ति को जीवन में सदा उदास और गमगीन ही देखा था। हर चीज के लिए व्याकुल और संतप्त ! और आज अत्यंत शांत और मस्त था। भगवान कहते हैं कि यहाँ सबकुछ अध्रुव है। जैसे पानी पर खींची हुई लकीर की कोई उम्र नहीं होती वैसा ही मनुष्य-जीवन भी है। इधर जन्म लेते हो, उधर मृत्यु दबे पाँव आ जाती है। जीवन शुरू होता है, आगे बढ़ता है, पीछे की लकीर मिटनी शुरू हो जाती है।

बचपन तेरा सूर्य सुबह का और दोपहर समझो जवानी।
साँझ ज्यों ढलता जर्जर बुढ़ापा रात को तेरी खतम कहानी।

तुम महल तो आलीशान बनाते हो, लेकिन उसके पहले ही तुम्हारा जीवन खंडहर हो जाता है। तुम्हारे सुख दुःख में तब्दील हो जाते हैं। भगवान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्रुव और अशाश्वत के साथ तीसरा शब्द 'दुःख' प्रयोग करते हैं, क्योंकि जो अध्रुव और अशाश्वत है उससे दुःख ही मिलने वाला है। रात में देखे जाने वाले सपने सच होते हुए भी, आँख खुलने पर टूट जाते हैं, तब क्या मिलता है दुःख और क्षोभ के सिवा। तुम्हें सपनों से सुख नहीं निराशा और दुःख ही मिलता है। ठीक इसी तरह संसार के सारे भौतिक सुख अंततः दुःख ही देते हैं। जब तक तुम्हें वह ईश्वरीय संपदा नहीं मिलती जो सदा ही आनन्द और सुखकारी है, तब तक अन्य सभी कुछ अध्रुव, अशाश्वत और दुःख देने वाले हैं। तुम तब तक दीन-हीन हो जब तक बाहर सुख खोज रहे हो। बाहर का धन तुम्हें और अधिक निर्धन बनाता है। तुम उस सिकंदर की तरह हो जाते हो जो विश्व-विजय तो कर लेता है, लेकिन भगवान के द्वार पर जाता खाली हाथ ही है। उसका धन उसकी मृत्यु को कुछ क्षणों के लिए भी न टाल सका। यही असारता है। ध्रुव और शाश्वत तो मृत्यु है। जीवन अध्रुव और अशाश्वत है। जीवन को तो हवा का एक झौंका ही उड़ा ले जाता है। इस हवा को ध्यान के द्वारा स्थिर किया जा सकता है। भोग-उपभोग के लिए व्यय की गई ऊर्जा ध्यान की ओर मुड़ जाए तो जीवन का रूपांतरण संभव है। तभी तुम वास्तव में धनवान होते हो।

किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दुग्गइं न गच्छेज्जा।

हे भगवान ! इस दुनिया में मुक्ति का ऐसा कोई मार्ग बताओ कि मैं दुर्गति से बच पाऊँ। यह जगत तो प्रतिध्वनि है। जैसे किसी वीराने में या जंगल में हम कोई स्वर करते हैं तो वह हम पर लौट आता है। मनुष्य के जीवन के कर्मों का यही स्वभाव है। वह जो कर्म करता है वही प्रतिध्वनित होकर उसके पास लौट आता है। वही मनुष्य अगर ध्यान की गहराई में उतर जाता है तो यही संसार जो अध्रुव और दुःख-बहुल दिखाई देता है—इससे स्वयं को मुक्त कर लेता है। अन्यथा जीवन में पाने की ही आकांक्षाएँ बनी रहती हैं और वे दुःख का उद्भव करती रहती हैं।

मुझे याद है, किसी सम्राट का एकमात्र पुत्र बीमार हो गया। रोग असाध्य था। राज चिकित्सक बुलाए गए। सभी प्रकार के प्रयत्न किए गए, मगर सभी बेकार। विकल सम्राट राजवैद्यों से अनुनय-विनय करने लगा कि किसी भी तरह उसके पुत्र को बचा लिया जाए। वह अपना सम्पूर्ण राजकोष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देने को तैयार हो गया, मगर पुत्र बच जाए, लेकिन क्या धन से जीवन खरीदा जा सकता है ? राजवैद्यों ने कह दिया कि राजकुमार कुछ घंटों के मेहमान हैं। सम्राट शैय्या के पास ही था, रानी भी वहीं थी, और भी बहुत लोग जमा थे। एक अजीब-सा सन्नाटा छाया हुआ था। मन-ही-मन सब राजकुमार के लिए दुआएँ माँग रहे थे। इस बीच सम्राट को झपकी आ गई।

वह स्वप्न देख रहा था कि वह एक विशाल साम्राज्य का चक्रवर्ती सम्राट है। समस्त सुख, वैभव और ऐश्वर्य उसके राज्य में विद्यमान है। स्वर्ग का अनुपम आलोक बिखर रहा है। उसके दस पुत्र हैं। वह अपने पुत्रों के साथ क्रीड़ा कर रहा है। अत्यधिक आनन्द का अनुभव हो रहा था कि पत्नी ने एकदम जगा दिया। वह बिलखती हुई कह रही थी—राजकुमार ! राजकुमार ! उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे। सम्राट जागा, उसने पूछा कि क्या हुआ ? पता चला कि राजकुमार नहीं रहा। वह स्तब्ध रह जाता है, क्षण भर के लिए वह निर्णय नहीं कर पाया कि क्या हुआ, लेकिन तुरंत ही ठहाका लगाकर हँस पड़ता है। सभी को आश्चर्य होता है कि अवसाद में ठहाका ! सभी प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देखने लगते हैं। रानी कहती है, 'सम्राट, यह क्या हो गया, आप ऐसे क्यों हँस रहे हैं ? अपना तो एकमात्र पुत्र चला गया।' सम्राट ने कहा, 'महारानी, आप तो एक पुत्र चला गया कह रही हैं, यहाँ तो मेरे ग्यारह पुत्र चले गए।' 'कौनसे ग्यारह पुत्र' ? सभी ने चौंकते हुए पूछा। तब सम्राट ने अपना स्वप्न कह सुनाया। रानी ने कहा, 'वह सपना था और यह हकीकत है।' सम्राट पुनः मुस्कराया और कहने लगा, 'किसे सपना कहूँ और किसे हकीकत ? दोनों ही सपने थे और दोनों ही टूट गए।'

आखिर तो संसार अध्रुव, अशाश्वत एवं दुःख-बहुल सपना है। और सपने कभी अपने नहीं होते। फिर भी मनुष्य क्षणिक सुख के लिए चिरकाल के दुःख स्वीकार कर लेता है। जैसे मछली आटे के चक्कर में जीवन गँवा देती है, भगवान कहते हैं वैसे ही मनुष्य काम-भोग के चक्कर में अपना जीवन खो देता है। पल भर के सुख के लिए जीवन भर का दुःख पाल लेता है। ठीक उसी तरह जैसे कुत्ता हड्डी चूसता है और अपने गाल में घाव कर लेता है। वहाँ से रिसने वाले खून-मांस में ही रस लेने लगता है। मनुष्य के संसार के सुखों की भी यही गति है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा सूत्र लें—

जह कच्छुलो कच्छुं, कंडयमाणो दुहं मुणइ सुक्खं।
मोहाउरा मणुस्सा, तह कामदुहं सुहं बिंति।।

एक रहस्यमय, परंतु पारदर्शी सूत्र। भगवान कहते हैं, खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुःख को भी सुख मानता है, ठीक उसी तरह मोहाविष्ट मनुष्य कामजन्य दुःख को सुख मानता है। खुजली के रोगी को खाज के बाद केवल जलन, विषाद और पीड़ा ही मिलती है वैसे ही कामोपभोगों के सेवन से भी विषाद ही मिलता है। जब तुम जीवन का आकलन करोगे तो पता चलेगा कि तुमने सबकुछ खो दिया और पाया कुछ भी नहीं। इसलिए भगवान बुद्ध ने चार आर्य सत्य कहे—पहला, दुःख है; दूसरा, दुःख का कारण है; तीसरा, दुःख का निरोध हो सकता है और अंतिम, दुःख के निरोध का उपाय अवश्य है। दुनिया में क्या है दुःख ? दुनिया दुःख से मुक्त नहीं है। तुम्हारे सुख क्षण भर में छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। जिस पत्नी को तुमने तीस सालों से अपना माना, अगर आज तुम्हें पत्नी का पुराना प्रेम-पत्र मिल जाता है, तो तुम्हारा सुख चूर-चूर हो जाता है, कहाँ है सुख ?

जम्म दुक्खं, जरा दुक्खं रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जंतवो।

भगवान कहते हैं कि इस संसार में जन्म दुःख है, जरा (वृद्धावस्था) दुःख है, रोग दुःख है, मृत्यु दुःख है, परिवार दुःख है। सभी ओर दुःख है। यह संसार दुःख से भरा हुआ है, जहाँ पर जीव कीचड़ में रहने वाले कीड़े की तरह क्लेश पाते हैं। कीचड़ का कीड़ा न तो बाहर निकल पाता है, न उसमें रह पाता है। इस क्लेश की, दुःख की अंतिम परिणति मृत्यु है। तुम उम्र की जिस परिधि से बाहर निकल जाते हो उसके बारे में सोच-सोचकर उसमें बड़ा सुख पाते हो। याद करते हो उन पुराने दिनों को। लेकिन कभी किसी बच्चे को देखा है ? वह जल्दी से जल्दी बड़ा हो जाना चाहता है, क्योंकि वह बड़े होने में सुख देखता है, लेकिन सुख है कहाँ ? क्या तुम्हें लगता है तुम सुखी हो ? वृद्ध पीछे देखता है और बच्चा आगे, लेकिन जिस अवस्था में वे हैं उसमें दुःखी हैं।

इस अस्तित्व में जो कुछ दिखाई देता है उसकी अंतिम परिणति दुःख है। व्यक्ति को अहसास होना चाहिए कि यह संसार दुःख है। जिसे तुम सुख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मान रहे हो, वह मृग-मरीचिका है, लेकिन यह दुःख किन कारणों से है, यह जाना जा सकता है। जीवन में वे कौनसे निमित्त हैं, जिनसे दुःख, तनाव, चिंता उत्पन्न होती है, यह पता लगाया जा सकता है। तुम जब इन कारणों को जान जाते हो तो उन्हें रोका भी जा सकता है और इन कारणों को रोकने के उपाय भी किए जा सकते हैं। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् स्मृति, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका और सम्यक् समाधि ही दुःख-निरोध के उपाय हैं। शुद्ध दर्शन से सम्यक ज्ञान मिलता है और सम्यक बोध से सम्यक् समाधि उपलब्ध होती है। हमारे जीवन का लक्ष्य भी यही है।

अगर जन्म, जरा, रोग और मृत्यु दुःख हैं, तो सुख कहाँ है ? जब तक दुःख का बोध नहीं होगा, सुख नहीं मिलेगा। पंडित नेहरू ने कहा था— 'महावीर और बुद्ध ने दुःख का दर्शन दिया। भारत को दुःखवादी बताया, संसार को संतप्त और दुःखी ही कहा।' लेकिन जब तक दुःख की पहचान नहीं होगी, सुख का अनुभव कैसे करोगे ! रात का अंधकार ही सूरज की कीमत जानता है। रोगी ही स्वास्थ्य का रहस्य समझता है। निराशा से ही आशा का जन्म होता है। अमावस्या ही पूनम का सौंदर्य समझती हैं। जब तक मनुष्य के मूल रोग (दुःख) की पहचान नहीं होगी, उपचार की औषधि का प्रभाव (सुख) कैसे मिलेगा, मनुष्य को अपनी मूर्च्छा, वासना को देखना होगा, तभी वह इनसे प्राप्त दुःखों से मुक्त हो सकेगा। अपनी दुष्पूर कामनाओं से ऊपर उठना होगा, तभी जीवन का सुख और सत्य उपलब्ध हो सकेगा।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काटें, मिथ्यात्व की कारा

माया और दुःख से घिरे हुए इन्सान के लिए जितना दुष्कर सत्य को जानना है, उतना ही दुष्कर सत्य को स्वीकार करना भी है। विष में लिपटे हुए इन्सान के लिए अमृत पाना कठिन है, लेकिन उससे भी कठिन अमृत का आचमन करना है। मनुष्य को जितना ज्ञान होता है उससे अधिक उसे ज्ञान का अहंकार होता है। यह अहंकार ज्ञान को अज्ञान में बदल देता है। बुद्धिमत्ता का अहंकार व्यक्ति को बुद्धिमान नहीं बना पाता, वह दुर्बुद्धि का आचरण करता हुआ भी देखा जा सकता है। आंशिक बोध पाये हुए व्यक्ति का अपने आंतरिक अहंकार के कारण बोध भी अबोधावस्था में परिणित हो जाता है, लेकिन जागे हुए व्यक्ति के पास ज्ञान होता है, ज्ञान का अहंकार नहीं। उसके पास दृष्टि होती है, लेकिन उसमें मिथ्यात्व नहीं होता; बोध और सम्यक्त्व होता है।

हमारे यहाँ दो संस्कृतियाँ रही हैं—एक, जिसमें भगवान अवतार लेते हैं और दूसरी, जिसमें साधना के मार्ग से व्यक्ति भगवत्ता प्राप्त करता है, भगवान बन जाता है। एक ओर भगवान मनुष्य-रूप में जन्म लेते हैं, अपनी लीलाएँ दिखाते हैं और अंत में अपने भगवत्स्वरूप में लीन हो जाते हैं। दूसरी ओर एक इन्सान जब अपने जीवन में सुगति का मार्ग जान लेता है, अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मबोध को पहचानता है, जड़-चैतन्य की भेद-रेखा को स्पष्टतः देख लेता है, तब उसकी जीवन-यात्रा जिस ओर जाती है, वह ईश्वरत्व की प्राप्ति है।

अध्यात्म-जगत में ब्राह्मण और श्रमण-संस्कृति भारत की देन है। इन दो संस्कृतियों में क्या भिन्नता है ? यही कि एक संस्कृति मानती है कि कभी किसी ईश्वर के अंतर्मन में यह भाव आता है कि 'एकोऽहं बहुस्यामः'—और वह ईश्वर मनुष्य का रूप धारण कर पृथ्वी-ग्रह पर आता है और अपनी ईश्वरीय लीलाएँ दिखाकर अपने स्वरूप में लौट जाता है। वहीं दूसरी ओर श्रमण-संस्कृति का रहस्य यही है कि व्यक्ति यहाँ पर मनुष्य-रूप में अपनी यात्रा प्रारंभ करता है और जब जीवन में विवेक, ध्यान, जागरूकता और आत्मबोध की प्राप्ति होती है, तब वह ईश्वरत्व की ओर प्रयाण करता है। जिसे आत्म-बोध, जीवन की दृष्टि, जीवन की शैली और जीवन का आयाम मिल जाता है, वह अपनी यात्रा इन्सान से भगवान की ओर करने लगता है। हमारा भी यही उद्देश्य है कि व्यक्ति उत्तरोत्तर जीवन का विकास करते हुए ईश्वरत्व के चरम शिखर पर पहुँच सके। इन्सान तलहटी है और शिखर ईश्वर है।

हमारे सूत्र किसी तंत्र का हिस्सा नहीं हैं, न ही कोई उपदेश हैं। ये वे वचन हैं, वे ऐसे जीवन-संवाद कि तुम्हारे भीतर सोया हुआ शौर्य जाग जाए, तुम्हारा सिंहत्व गरज उठे, तुम्हारे भीतर छिपी हुई परम आभा, परम दिव्यत्व की परख हो सके और अपनी यात्रा शिखर की ओर प्रारंभ करे। अभी तक तलहटी में ही जन्म लिया और वहीं अंत भी हो गया, शिखर नहीं छू पाए। केवल शिखरों को देख लेने भर से शिखरों की यात्रा का आनंद नहीं लिया जा सकता। पुस्तकों में हिमालय के चित्र देख लेने भर से हिमालय की यात्रा का आनन्द नहीं मिल सकता, उसी तरह शास्त्रीय वचनों को सुन लेने से या मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण की चर्चाएँ कर लेने से मुक्ति का परम आनन्द उपलब्ध नहीं होता। उसके लिए तो ध्यान-साधना के मार्ग से गुजरना होता है। तब अनेक भवों से निकलने के बाद मानव-चेतना अन्तर्पीड़ा को देख पाती है और उसकी यात्रा पीड़ा-मुक्ति की ओर आरंभ होकर परम सुख को प्राप्त करती है।

हा ! जह मोहिय-मइणा, सुग्गइमग्गं अजाणमाणेणं।
भीमे भवकंतारे, सुचिरं, भमियं भयकरम्मि।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारा जीवन संसार के इस भवसागर के दलदल में ही पूर्ण हो जाता है, लेकिन जब चेतना इस पीड़ा को देखती है तो परमज्ञान का मार्ग ढूँढती है। तब कोई भगवत् चेतना संसार के स्वरूप को भी देखती है और आंतरिक स्वरूप को भी और तब इन दो स्वरूपों के प्रति उसे स्पष्टतः भेद-रेखा दिखाई दे जाती है। उस भव्य चेतना को पता चलता है कि यह भेद सुगति का मार्ग न जानने के कारण है। तब वह कहता है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण ही मैं मूढ़मति भयानक तथा घोर भव-वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा। महावीर जैसे महापुरुष कहते हैं अपने पूर्वजन्म की यात्राओं को देखने और आत्मा के अनन्त भवों को देखने के बाद मैंने अन्तर्यात्रा करके ही जीवन के रहस्य और सत्य का अनुभव किया।

पुस्तकों से लिया गया ज्ञान उधार का होता है, चर्चाओं से मिली जानकारी अधूरी होती है, लेकिन स्वानुभूति ही सत्य होती है। तब ही पता चलता है कि वह कौन-सी कला है जिससे हम वंचित रह गए। तुम संसार की बहुत-सी कलाओं में पारगंत हो सकते हो, लेकिन फिर भी एक कला से अनजाने रह गए। वह कला है सुगति का मार्ग। जैसे मसालेदार सब्जी में नमक न डाला जाए तो वह बेस्वाद हो जाती है, वैसे ही जीवन सुगति के मार्ग के बिना व्यर्थ है। उस परम ज्ञान के निकट पहुँची आत्मा कहती है कि मुझ मूढ़मति ने सुगति का मार्ग नहीं जाना। मूढ़मति कौन ? जो अज्ञान से घिरा है, जिसे बोध नहीं है और जो आत्म-तत्त्व का अवलोकन नहीं कर पाता।

प्रायः ऐसा होता है कि जो मनोनुकूल होता है उसे हम तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं और जो प्रतिकूल होता है उस पर चिंतन-मनन किये बिना ही नकार देते हैं। परिणामतः जो मन के अनुकूल होता है वह चाहे मिथ्या हो, मनुष्य तब भी उसे स्वीकार कर लेता है और प्रतिकूल होने पर चाहे वह सम्यक् हो, तब भी उसे अस्वीकार कर देता है। आज सभी के पास ज्ञान का अकूत भंडार है उसे कुछ भी बताना शेष नहीं है, लेकिन फिर भी वह सुखी नहीं है। वास्तव में यह ज्ञान मात्र भंडारण के लिए है, आचरण के लिए नहीं। तभी तो भगवान ने जाना कि इतना ज्ञान होने के बाद भी वे मूढ़मति ही रह गए, क्योंकि सुगति का मार्ग नहीं जाना। ज्ञान का भंडार ही उन्हें अज्ञानी बना गया, क्योंकि जब वास्तविक ज्ञान का अवतरण हुआ तो उन्होंने जाना कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनका पूर्वज्ञान परोक्षज्ञान था। अब जो हुआ, वह आत्मजनित ज्ञान ही प्रत्यक्ष ज्ञान है। लेकिन आज स्थिति विपरीत है। आज सभी लोग सबकुछ जानते हैं। जानते ही नहीं, जान-जानकर अजीर्ण भी हो रहे हैं और जब-तब इसे प्रगट करते रहते हैं कि वे सब जानते हैं। यह आज की आम समस्या है।

मुझे याद है, एक कन्या का विवाह हुआ। ससुराल में पति के अतिरिक्त अन्य कोई न था। उस कन्या को खाना बनाना नहीं आता था। न आता था, कोई बात नहीं, लेकिन डींग ऊँची-ऊँची हाँकती कि उस जैसी पाक-निपुण अन्य कोई नहीं है। जब भी कुछ बनाना होता अपने पड़ोस में जाती और कहती, 'अम्माजी यह कैसे बनाते हैं।' जब पड़ोसन बता देती तो वह कहती 'यह तो मुझे पहले से ही आता है।' 'तब पूछने क्यों आई थी ?' 'ऐसे ही'। बस कितनी ही चीजें पूछकर बना चुकी। पड़ोसन बेचारी रहमदिल थी, वह समझती थी इसे कुछ नहीं आता। लेकिन कब तक ?

एक दिन पति ने खीर की फरमाइश की। वह पड़ोस में गई, फिर पूछा। बुढ़िया ने कहा, 'दूध उबालना, इसमें चावल डालकर पका लेना। फिर शक्कर डाल देना और केशर, बादाम, इलायची भी डाल देना। उसने कहा, 'यह तो मुझे पहले से ही आता था।' बुढ़िया हैरान-परेशान। रोज आती है, पूछती है और कहती है उसे पहले से ही आता है। इसी तरह छः महीने बीत गए, लेकिन अब बुढ़िया ने सोचा, इसे 'अकल' देनी ही पड़ेगी। युवती फिर उसके पास आई और बोली, 'माताजी आज कुछ लोग हमारे घर आने वाले हैं क्योंकि मेरे पति का जन्मदिन है। पतिदेव चाहते हैं कि भोजन में लापसी भी बनाई जाए। लापसी कैसे बनाते हैं, बता दो।' बुढ़िया ने कहा, 'पहले पानी उबाल लेना, उसमें गेहूँ का दलिया डाल देना, जब दाने पक जाएँ तो घी और गुड़ डाल देना, फिर इलायची वगैरह डाल कर जब तैयार हो जाए तो आँच पर से उतार लेना।' युवती अपनी आदत के मुताबिक बोली, 'यह तो मुझे पहले से ही आता है।' वह जाने लगी, तो बुढ़िया ने पीछे से आवाज लगाकर कहा, 'एक बात तो भूल ही गई, जब लापसी बन जाए तो उसमें ऊपर से सौ ग्राम तमाखू डाल देना।' उसने फिर कहा, 'यह तो मुझे पहले से ही आता है, माँजी आप क्या बता रहीं हैं।' बुढ़िया ने कहा, 'जा अपने घर, पता लग जाएगा क्या आता है, क्या नहीं आता है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युवती घर आई, लापसी बनाई। अब तमाखू तो घर में थी नहीं। दौड़कर बाजार से सौ ग्राम तमाखू लाई और ऊपर से डाल दी। आए हुए मेहमान खाना खाने बैठे। जैसे ही उन्होंने लापसी खाई तो किसी को छींके आने लगीं, कोई वमन करने लगा। पति ने पूछा, 'क्या डाला है इसमें ?' उसने कहा, 'कुछ नहीं, जैसे उस बुढ़िया ने कहा, वह सब डाला है।' 'सब क्या ?' पति चिल्लाया। उसने बता दिया कि यह डाला, वह डाला और सौ ग्राम तमाखू ऊपर से। पति दौड़ा-दौड़ा पड़ोस में गया और बुढ़िया से कहने लगा, 'आपने तमाखू क्यों बताया ?' 'मैंने कुछ नहीं बताया, तेरी बीवी ही कहती है वह पीहर से ही सीखकर आई है।' उसने जवाब दिया।

जिसे ज्ञान का अहंकार हो गया है उससे अधिक अज्ञानी भला अन्य कौन है !

भगवान कहते हैं, मैं जन्मों-जन्मों तक संसार में भटकता रहा, लेकिन सुगति का मार्ग नहीं जाना। भगवान ने संसार को भयानक अटवी (भयानक जंगल) और घोर भवबंध कहा। इससे अधिक भयानक और कुछ होता नहीं, जहाँ पर जन्म का अंत मृत्यु में, खिलने का अंत मुरझाने में और उगने का अंत डूबने में होता हो, वहाँ इससे अधिक भयानक क्या स्थिति होगी ! हम सभी इस स्थिति से मुकाबिल हैं, लेकिन सुगति का मार्ग नहीं ढूँढ़ रहे हैं। और वे जिन्होंने सुगति के मार्ग को जाना है, मैं चाहता हूँ, हम उसे गुनगुनाएँ, उन वचनों का अमृतपान करें। जब तक वह मार्ग नहीं मिल जाता, जीवन में पाया हुआ सभी ज्ञान निरर्थक है।

ध्यान, विवेक, विचार, जागरूकता, अमूर्च्छा, अप्रमाद और आत्म-बोध यही सुगति का मार्ग है। जिसे यह मार्ग मिल गया उसके मिथ्यात्व की कारा स्वयमेव ही टूट जाती है।

हमारे यहाँ मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का व्यापक प्रयोग हुआ है। सत् को असत् जानना मिथ्यात्व है और असत् को सत् रूप जानना भी मिथ्यात्व है। लेकिन असत् को असत् जानना और सत् को सत् रूप जानना सम्यक्त्व है।

अगला सूत्र है—

मिच्छतं वेदंतो जीवो, विवरीय-दंसणो होइ।
न य धम्मं रोचेदि हु, महुरं पि रसं जहा जरिदो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह सूत्र मिथ्यात्व में भटकती आत्मा को सम्यक्त्व की राह दिखा रहा है। जो आत्मा भव-वन में जन्मों-जन्मों से संसार के मिथ्यात्व में डूबती आई है, उसी में जीती आई है, उसी का विषपान करती आई है, उस आत्मा के लिए पहला बोध है कि सुगति का मार्ग जान, उसे पहचान और उसकी दिशा पकड़। जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त होता है उसकी दृष्टि प्रतिगामी हो जाती है। जैसे किसी ज्वरग्रस्त को मिठाई भी कड़वी लगती है, ज्ञानी कहते हैं–वैसे ही मिथ्यात्व से ग्रस्त व्यक्ति सम्यक्त्व का बोध भी विपरीत दिशा ही देता है।

मुल्ला नसरुद्दीन गधे पर बैठकर कहीं जा रहा था। रास्ते में किसी ने पूछा, 'मुल्ला, कहाँ जा रहे हो ?' 'जहाँ गधा जा रहा है वहीं', मुल्ला ने जवाब दिया। 'अरे, क्या बात है, गधा कौन है तुम या यह ?' उसने पूछा। मुल्लाजी ने कहा, 'भैया, यह विचित्र प्रकार का गधा है। इससे जो कहो उल्टा ही करता है। मैं कहता हूँ दुकान चल, यह घर ले जाएगा। घर का कहूँ तो मंदिर ले जाएगा। मंदिर का बोलूँ तो मस्जिद चल देगा, मस्जिद जाना हो तो बाजार की ओर चल देगा। अब मैंने कहना ही बंद कर दिया है। मैं बैठा रहता हूँ जिधर यह जाए, उधर ही चला जाता हूँ।'

मनुष्य का अज्ञानी मन गधे की तरह है। जहाँ ले जाना चाहते हैं, वहाँ चलता नहीं। जहाँ नहीं ले जाना चाहते, वहाँ चला जाता है। गधे के हिसाब से चलो, तो पूरा गधा ही बना बैठता है। गधा, आखिर गधे के ही रास्ते पर ले जाएगा।

हमें मिथ्यात्व की कारा को काटना है, मिथ्यात्व से अगर मुक्त होना है तो पहली आवश्यकता सुगति के मार्ग को जानने की है। उसके प्रति प्यास और ललक उत्पन्न करें। जहाँ मनुष्य को सुगति का मार्ग मिल गया, वहीं सम्यक्त्व उपलब्ध हो गया, वहीं पर मिथ्यात्व की कारा भी कट चली।

भगवान करे आप सबके जीवन में सुगति का परम पावन मार्ग उपलब्ध हो जाए।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य : एक समग्र धर्म

जीवन, जगत और अध्यात्म के क्षेत्र में सैंकड़ों प्रश्न मनुष्य के मनोमस्तिष्क में उमड़ते रहते हैं। कुछ प्रश्नों का समाधान पुस्तकों में मिल जाता है, कुछ प्रश्नों के उत्तर गुरु से मिल जाते हैं, लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे भी होते हैं जिनका समाधान मनुष्य को स्वयं खोजना पड़ता है। इन प्रश्नों का उत्तर किसी शब्द से नहीं मिलता, न ही कोई गुरु इनका समाधान देने में समर्थ है। आत्म-बोध में ही सारा समाधान है। जिसे आत्म-बोध मिल जाता है उसका जीवन अध्यात्म की दिशा तय करने लगता है और जगत भी आध्यात्मिक हो जाता है।

प्रश्न तो कई होते हैं—कुछ तर्क के, कुछ कुतर्क के और कुछ समझ के। आज मैं आपको एक ऐसा ही प्रश्न सौंपना चाहता हूँ—'सत्य क्या है ?' यह प्रश्न चिर प्राचीन और चिर नूतन है। धर्म के इतिहास में यह प्रश्न बार-बार उठा है कि 'सत्य क्या है ?' संभवतः यह प्रथम और अंतिम प्रश्न भी है। मनुष्य-जीवन की चूक यही है कि वह इस प्रश्न का समाधान मात्र शास्त्रों से पाना चाहता है। वह चाहता है कि कोई गुरु, कोई ऋषि, कोई संत उसे इस प्रश्न का उत्तर बता दे। जीवन भर वह सत्य की उधेड़बुन में लगा रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं कि रोम के गवर्नर पोंटिएस पायनेट ने जीसस को क्रॉस पर लटकाने की सजा दी थी। वह तत्कालीन व्यवस्थाओं के कानून से बंधा था। उसने सजा सुनाई। कहते हैं कि सजा सुनाने के बाद वह कुर्सी से उतरकर जीसस के पास गया और कहने लगा, 'आप तो क्रॉस पर लटकने ही वाले हैं, लेकिन मेरे मन में एक प्रश्न है और मैं उसका समाधान चाहता हूँ। मेरा प्रश्न है, 'अस्तित्व का सत्य क्या है ?' जीसस ने अपने जीवन में हजारों प्रश्नों के उत्तर दिए थे। सभी लोगों के प्रश्नों का समाधान किया था, लेकिन यह पहला प्रश्न था, जो किसी ने नहीं पूछा था। जीसस खड़े हुए, कुछ क्षणों के लिए आँखें बंद कीं, फिर चुपचाप चले गए। लोग समझ न पाए कि उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया। जीवन के अंतिम प्रश्न पर जीसस मौन हो गए, क्योंकि सत्य का कोई उत्तर नहीं होता, उसकी केवल अनुभूति होती है।

सत्य को पाने की विधि बताई जा सकती है, लेकिन सत्य क्या है, इसका उद्घाटन नहीं किया जा सकता। जापान की झेन परंपरा में लिंग सू नाम के प्रसिद्ध संत हुए हैं। एक दफा जापान के सम्राट ने लिंग सू को राजसभा में प्रवचन देने के लिए बुलाया। देश भर के सुधी श्रोता आमंत्रित किए गए। सभी समय पर पहुँच गए। राजसभा खचाखच भर गई। सम्राट भी अपने सिंहासन पर विराजमान थे। ठीक समय पर लिंग सू आए और अपनी प्रवचन-पीठिका पर जा बैठे। सम्राट ने उठकर प्रणाम किया और कहा, 'संतप्रवर, आप प्रवचन शुरू करें इससे पहले मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। मेरे मन में जिज्ञासा है कि आप बताएँ, सत्य क्या है ?' लिंग सू मौन हो गए, फिर अचानक उठे और सामने की टेबल पर जोर से मुक्का मारा, फिर कुछ क्षणों के लिए मौन हुए और तब चुपचाप ही रवाना हो गए। लोग समझ भी न पाए कि यह क्या हुआ ? लिंग सू प्रवचन देने आए थे और चले क्यों गए ?

लिंग सू की मौन अभिव्यक्ति थी—सत्य मौन में खिलता है। गौतम बुद्ध के साथ भी ऐसी ही घटना घटी। भगवान बुद्ध एक दिन कमल का श्वेत पुष्प लेकर प्रवचन-सभा में पहुँचे। वहाँ जाकर अपने आसन पर बैठ गए। हर दिन तो विराजते ही व्याख्यान शुरू कर देते थे, पर यह क्या आज तो वे शांत-मौन केवल कमल-पुष्प को ही देखे जा रहे हैं। आधा घंटा बीत गया वे कुछ न बोले, फूल ही देख रहे हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन-सभा में मौजूद हजारों शिष्यों में महाकाश्यप भी एक था। महाकाश्यप सदा गंभीर रहता था, न किसी से अधिक बात करता और न हँसता-मुस्कुराता। वही महाकाश्यप भगवान को पुष्प निहारते हुए देखकर थोड़ी देर बाद जोर-जोर से हँसने लगा। वह आज बहुत प्रसन्न, प्रमुदित और आनन्दित था। तब भगवान अपने स्थान से उठे और आगे बढ़कर वह कमल-पुष्प महाकाश्यप को सौंप दिया। शिष्यों ने कहा, 'भगवान आज का प्रवचन ?' प्रभु ने कहा, 'आज का प्रवचन पूर्ण हो गया।'

जहाँ साधक मौन में ही सत्य की अनुभूति करने की कला सीख लेता है, वहाँ सत्य की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों की आवश्यकता नहीं होती। सत्य की चिरंतन अभिव्यक्ति यह है कि जब सत्य को बोलने की कोशिश की जाती है, तो वह अपने मूल स्वरूप को आगे-पीछे, कम-ज्यादा कर बैठता है।

मनुष्य के जीवन की पहली आवश्यकता सत्य है, उसका जीवन सत्यमय हो, उसका अस्तित्व सत्य से जुड़ा हो। अहिंसा सत्य है, अगर यह सत्य नहीं है तो उसका अस्तित्व भी नहीं है। अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, वीतरागता सत्य हैं; क्योंकि सत् ही आत्मा का स्वभाव है। जब हम आत्मा के स्वरूप की बात करते हैं तो यही कहते हैं—सत्-चित्-आनन्द (सच्चिदानंद)। आत्मा का मौलिक स्वभाव—आनन्द दशा। कौन-सा आनंद ? परमात्मा की आनंद दशा। परमात्मा क्या है—वह सत् है। जीवन के रहस्य के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त हुआ—सच्चिदानंद। आनंद मनुष्य का स्वभाव है। आनंद से ही सत्य मिलता है।

जीवन, जगत और अध्यात्म का प्रथम और अंतिम सोपान सत्य ही है। महावीर ने जगत छोड़ा, क्यों ? सत्य को पाने के लिए; जीवन का अनुसंधान किया सत्य को पाने के लिए और उन्हें उपलब्ध हुआ, केवल सत्य ! बुद्ध ने साधना क्यों की ? सत्य का अनुसंधान करने के लिए अर्थात् साधना का प्रथम चरण भी सत्य है और अंतिम उपलब्धि भी सत्य है। जिसके जीवन में सत्य का बसेरा नहीं, उसके हाथ से जीवन, जगत और अध्यात्म सब छिटक जाते हैं। धर्म का शाश्वत प्रकाश यही है कि व्यक्ति ध्यान रखे—'सत्यमेव जयते।'

सद्गुरु का क्या अर्थ है ? जो सत् का स्वामी है वही सद्गुरु। जिसके जीवन में मिथ्यात्व का किंचित् भी अवशेष है, वह सद्गुरु नहीं हो सकता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरु तो बहुत मिल जाएँगे, लेकिन सद्गुरु कोई एकाध ही होता है। आज के सूत्र श्रावक के लिए कसौटी हैं। तुम्हारा जीवन झूठ का पुलिंदा हो गया है। पहले लोग साँझ को लेखा करते थे कि कितना झूठ बोला या कौन-सा गलत काम किया, लेकिन आज तो इस बात का हिसाब लगाने की जरूरत है कि कितना सच बोला या कितने अच्छे काम किए। किसी भी सत्पुरुष के लिए सत् और सत्य की जितनी मूल्यवत्ता है अन्य किसी वस्तु की नहीं है। हमारे जीवन की प्राथमिकता बनें कि हम मिथ्यामति से हटकर सत्यबुद्धि पर आ जाएँ।

सूत्र है—

सच्चम्मि वसदि तवो, सच्चमि संजमो तह वसे सेसा वि गुणा।
सच्चं णिबंधणं हि य, गुणाण-मुदधीव-मच्छाणं।।

सत्य में तप, संयम और शेष सभी गुणों का वास है। जैसे समुद्र मछलियों का आश्रय है, वैसे ही सत्य समस्त गुणों का आश्रय है।

सबसे पहले हमें सत्य का अर्थ समझ लेना चाहिए। वस्तुतः सत्य कोई वस्तु नहीं है। सत्य तो प्रतीति है, अनुभूति है। सत्य का अर्थ है ऐसे जीना कि जिस जीवन में वंचना न हो, जहाँ बाहर और भीतर का साम्य हो। जिसने सत्य को साध लिया, उसका सब सध जाएगा। जिसका बाहर और भीतर का जीवन एक-सा हो गया, वह हिंसा नहीं कर सकता, उसके जीवन में क्रोध, झूठ और प्रतिस्पर्धा नहीं हो सकती। सत्य आएगा तो प्रकाश उतरेगा।

हम दो ढंग से जीवन जीते हैं—हम हैं कुछ और दिखाते कुछ और हैं। बाहर कुछ है और भीतर कुछ और है। प्रदर्शन कुछ करते हैं और पालन कुछ और। महावीर कहते हैं, तुम जो हो वही रहो, कुछ और दिखाने की कोशिश मत करो, वरना तुम्हारा हर कृत्य, हर आचरण असत्यमय हो जाएगा। क्या कभी आपने विचार किया कि कभी कोई दूसरा महावीर क्यों नहीं हो पाया ? कितनों ने कोशिश की होगी, लेकिन दूसरा महावीर नहीं हो सका। सत्य की खोज के पथ पर पुनरुक्ति नहीं होती। क्या कभी दूसरे कृष्ण की बाँसुरी बजी, क्या कभी दुबारा बुद्ध की करुणा बरसी ? सत्य, स्वयं का परम स्वीकार है तब शेष गुण अपने आप आ जाते हैं। यही समझें, जो हो रहा है प्रकृति की व्यवस्थाएँ हैं मेरा कोई प्रयास नहीं है।

महावीर ने जब मुनि-जीवन स्वीकार किया, तब उनके कंधे पर मात्र एक वस्त्र था। हमारे तो आग्रह हैं श्वेत वस्त्र, पीत वस्त्र या निर्वस्त्र के। तुम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या तो श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, लेकिन महावीर को ऐसा कोई आग्रह नहीं था। अस्तित्व ने उनके लिए जो व्यवस्था की, उसे उन्होंने सहजतया स्वीकार कर लिया। एक चादर लेकर निकले थे। उसे ही बिछा लेते, उसे ही पहन लेते। राह चलते किसी याचक ने कहा कि कुछ दे जाएँ। महावीर तो अपरिग्रही और अकिंचन थे। उनके पास देवों द्वारा दी हुई एक चादर थी। उन्होंने उसमें से आधी फाड़कर दे दी। आगे बढ़ चले जंगलों की ओर, कभी तेज हवा का झौंका आया और वह चादर भी उड़ गई। उलझ गई झाड़ी में जाकर। सोचा, अस्तित्व नहीं चाहता कि मैं चादर ले जाऊँ, अब यह झाड़ी माँगती है। जब सारे पशु-पक्षी बिना वस्त्रों के रह सकते हैं तो मैं क्यों नहीं ? और झाड़ी से छुड़ाना भी शोभा नहीं देता। महावीर निर्वस्त्र ही आगे बढ़ गए।

आज मुनि-जीवन धारण करने के लिए बड़े-बड़े आयोजन किए जाते हैं। श्वेत वस्त्रों को धारण करने वालों का अलग सम्प्रदाय है और निर्वस्त्र रहने वालों का अलग। क्या महावीर ने सब कुछ सप्रयास किया था ? यह तो एक घटना थी जो घट गई और महावीर ने उसे भी स्वीकार कर लिया।

अगर हमारे भीतर अज्ञान है तो स्वीकार करना चाहिए। वस्त्रों से सुशोभित तुम लोग जरा भीतर झाँककर तो देखो कि बाहर से जिस शरीर को इतना सजाया है वह भीतर कितना सहज है। जीवन को दोहरी व्यवस्था से बाहर निकालना होगा। तुम अच्छे काम तो सार्वजनिक रूप से करते हो और बुरे काम इतने छिपकर करते हो कि किसी को भनक भी न लगे, लेकिन एक बात सदा ध्यान रखो कि तुम सबसे बच सकते हो, लेकिन खुद से बचकर कहीं नहीं जा सकते। इसलिए स्वयं को देखो। अपनी प्रदूषित मानसिकता से बाहर निकलो। आज के युग में वायु प्रदूषित और विचार भी प्रदूषित हैं। जैसे वायु के प्रदूषण से जीवन दूभर हो रहा है, वैसे ही विचारों के प्रदूषण से जीवन का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। अब मुहावरे बदलने लगे हैं। दोमुँहे साँप नहीं, इंसान हो गए हैं। कुत्तों के काटने से इंसान नहीं, कुत्ते ही मरने लगे हैं। इतना जहरीला हो गया है हमारा मानस। इसलिए भगवान कहते हैं—'सच्चम्मि वसदि तवो'।

सत्य में बसता है तप और संयम भी वहीं है। गलत काम किया तो वह बुरा है, लेकिन करके छिपाया तो यह उससे भी बुरा है। एक कलर फोटोग्राफी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती है, दूसरी एक्स-रे फोटोग्राफी। कलर फोटोग्राफी व्यक्ति का बाह्य व्यक्तित्व है और एक्स-रे व्यक्ति का आन्तरिक व्यक्तित्व। आन्तरिक व्यक्तित्व का बोध ही जीवन में सत् का आगमन है।

'ओ, रंभाती नदियो ! बेसुध कहाँ भागी जा रही हो, बंसी-रव तुम्हारे भीतर है।' यह बंसी-रव मनुष्य के अंतर में है, सत्य की पावन गंगा कहीं और प्रगट नहीं होती। जैसे कुएँ में पानी बाहर से नहीं भीतर से ही आता है, अंतःस्रोतों से प्रगट होता है वैसे ही साधना के मार्ग में सत्य किसी गुरु या शास्त्र से नहीं, अपितु स्वयं के भीतर से उपलब्ध होता है।

सत्य में तप बसता है और तप क्या है ? यह जो हम उपवास कर रहे हैं क्या यही तप है या अट्ठाई, मासक्षमण या उपधान कर लेना ही तप है ? भगवान कहते हैं कि सत्य में तप बसता है। क्या अर्थ है इसका ? तप वह जो तुम्हारे भीतर की अड़चनों का सामना करे। जो अड़चनें पैदा हो रही हैं उन्हें झेलने के लिए तैयार होना तप है। भगवान तो साधना के शिखर पुरुष हैं। वे सहज जीवन में विश्वास करते हैं। भगवान कहते हैं कि अगर अस्तित्व मुझे भोजन देना चाहता है तो जरूर देगा। इसलिए वे प्रतिदिन ध्यान में निर्णय करते हैं कि अगर ऐसी घटना घटी तो मैं उसी द्वार से आहार ग्रहण करूँगा। घटना—कि घर के सामने गाय खड़ी हो और उसके सींग में गुड़ लगा हो। अब यह तो हो नहीं सकता था, लेकिन महावीर का कहना है कि अस्तित्व जो चाहे करे। कहते हैं महावीर ने कई दिन तक भोजन नहीं किया। पर एक दिन ऐसा हुआ।

गुड़ से भरी बैलगाड़ी जा रही थी, पीछे से गाय ने गुड़ खाने की चेष्टा की और उसके सींग में गुड़ लग गया। बस, जिस घर के सामने गाय खड़ी थी, वहीं से आहार ग्रहण किया। तीन महीने बाद अस्तित्व ने चाहा तो ठीक। चंदनबाला की गाथा तो आप सभी को मालूम है। तप वह है। आई हुई अड़चनों को झेलना। अभी बहुत से काम हैं जो तुम अभी कर रहे हो, पर कल न कर पाओगे। यह जो न करने की अवस्था है, यह संयम है। अभी तक तुम दान देते थे, दूसरों को दिखाने के लिए। कल को अगर यह भाव आ जाए कि प्रदर्शन नहीं करना, तुम चुपचाप जाकर दान भंडार में डाल आओगे। दोहरे व्यक्तित्व से मुक्ति पा जाओगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुझे याद है, यह मुम्बई की घटना है। एक भिखारी भीख माँग रहा था। एक बोर्ड लगा रखा था, 'अंधे को कुछ देकर जाएँ।' एक व्यक्ति उधर से निकला, उसने पुराना घिसा हुआ पचास पैसे का सिक्का डाल दिया। सिक्का डालकर वह जैसे ही आगे बढ़ा कि भिखारी ने आवाज लगाई, 'भाई सा'ब खोटा सिक्का मत डालकर जाओ।' राहगीर ने कहा, 'क्या बात है तुमने तो बोर्ड लगा रखा है अंधे को कुछ देकर जाओ।' भिखारी ने कहा, 'यह तो आज मैं यहाँ बैठा हूँ, जो भिखारी रोज यहाँ बैठता है वह फिल्म देखने गया है।'

भिखारी भी देखकर बोलता है। वह जानता है कि दान तो कोई देना नहीं चाहता। लेकिन लोग इतने ईमानदार भी नहीं हैं कि इस बात को स्वीकार कर लें। लोग दिखाना चाहते हैं कि हम दानी हैं। तुम तो छुटकारा पाने के लिए दे देते हो। ईमानदार न देगा, वह कहेगा मेरे मन में देने का भाव ही नहीं है, क्या करूँ ?

तप आएगा तो संयम भी पैदा होगा, क्योंकि बहुत से काम तुम ऐसे कर रहे हो जो करने ही नहीं चाहिए। तुम दूसरों को देख-देखकर किए जा रहे हो। तुम सोचते भी नहीं हो कि जो दिखावा तुम कर रहे हो, उसकी कोई जरूरत नहीं है ? तुम पड़ोसियों को देखकर फर्नीचर खरीद रहे हो, साड़ियाँ और बर्तन खरीद रहे हो, चाहे तुम्हारे घर में रखने की ही जगह न हो। अगर ईमानदारी से आत्म-मनन और योग्यता का मूल्यांकन करोगे, तो बहुत से काम बंद हो जाएँगे, क्योंकि वे निष्प्रयोजन हैं। दूसरों को दिखाने के लिए तुम भी दिखावा करते हो।

लड़की की शादी करनी है, लोग हजारों रुपए लुटाते हैं। उनके पास नहीं है तो कर्ज लेकर लुटाते हैं, क्यों ? बस, कारण कि दूसरों ने इतना लगाया तुम कैसे पीछे रह जाओ। तुम अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हो। अहंकार पुष्ट करना चाहते हो। जो तुम लड़की को दे रहे हो अपनी इज्जत बढ़ाने के लिए दे रहो हो। शायद तुम्हें लड़की से भी मतलब न हो, तुम तो लोगों को दिखाना चाहते थे, देख लो।

भगवान कहते हैं, जैसे समुद्र मछलियों का प्रमुख केंद्र है, उत्पत्ति-स्थल है, वैसे ही सत्य समस्त धर्मों का जन्म-स्थान है। भगवान की नजरों में तप, संयम और शेष सभी जितने गुण हैं उनका बसेरा सत्य में है। जैसे सागर कह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिया जाए तो उसमें सभी नदियाँ आ जाती हैं फिर अलग-अलग नदियाँ ढूँढ़ने कहाँ जाओगे। ठीक उसी तरह कह दिया सत्य, उसमें सभी गुणों का समावेश हो गया। जब सागर ही मिल जाए तो नदियों के पीछे क्या भटकना ! महावीर कहते हैं, सत्य की खोज करें। सत्य के साथ तप और संयम तथा शेष गुण भी आ जाएँगे। जीवन की व्यवस्थाओं में रूपान्तरण किया जाना चाहिए, तभी हम कुछ उपलब्ध कर पाएँगे। प्रभु करे, हम बाहर-भीतर की भेद-रेखाओं को समाप्त कर एक नवीन ताल-लययुक्त संगीत उत्पन्न करें। यही शुभकामना है।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म, फिर से समझें एक बार

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है, 'सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रजः।' सरल, किन्तु गहनतम सूत्र है। 'सर्व धर्मान् परित्यज्य' सारे धर्मों का त्याग कर। सारे धर्म अर्थात् तन के धर्म, मन के धर्म, भौतिकी तत्त्वों से जुड़े धर्मों का त्याग करो। क्योंकि ये धर्म नहीं, विधर्म हैं। 'मामेकं शरणं व्रजः' परमात्मा की भागवत् शरण में चला आ। मैंने दो शब्दों का प्रयोग किया है धर्म और विधर्म। इन्हें समझें।

प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है ? जब व्यक्ति आंतरिक विधर्म दशाओं से लौटकर आत्म-दशा में, परमात्म-स्थिति में, अपने मूल स्वभाव में लौट आता है, तब उसके जीवन में धर्म जीवित होता है। क्रोध तुम्हारा दुश्मन है, लेकिन तुमने उससे आत्मीयता बना ली है। भगवान कहते हैं कि इस आत्मीयता को एक किनारे रख दिया जाना चाहिए। वैर तुम्हारा दुश्मन है, लेकिन तुम वैर में ही जी रहे हो, लोभ तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा पाप है, लेकिन हर पल तुम लोभ कर रहे हो, तृष्णा तुम्हारे जीवन की दुखांतिका है, लेकिन तृष्णा तुम्हें घेर चुकी है; वासना तुम्हारे जीवन के अंत का निमित्त है, लेकिन तुम वासना के घेरे में ही फँसे हो। भगवान कहते हैं कि जीवन में जो क्रोध, काम, कषाय, मान, माया, लोभ, लिप्सा, वासना, तृष्णा की विधर्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दशाएँ हैं, इन सबका परित्याग करके अगर तू परमात्म-शरण में लौट आता है तो तू धर्म को आत्मसात् कर लेगा।

जब व्यक्ति अपने बाह्य धर्म को त्यागकर आत्मधर्म में प्रवृत्त हो जाता है तब दुनिया में कोई भी ऐसा पाप नहीं है जिससे प्रभु मुक्त न कर सकें। 'अहं त्वाम् सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा सुचः'। जिसने अपने जीवन की हर शुभ-अशुभ दशाओं को, पाप-पुण्य को बिना छिपाए, प्रभु को समर्पित कर दिये हैं, उस धार्मिक व्यक्ति का मोक्ष निश्चित है।

धर्म कोई परम्परा नहीं है। समाज, संस्कृति, इतिहास में परम्परा हो सकती है, पर धर्म में नहीं। गणित और विज्ञान में भी वही चलता है जो वर्षों से चला आ रहा है। आइन्स्टीन का सापेक्षता का सिद्धान्त वही है जो उसने प्रतिपादित किया था। अब सापेक्षता को तलाशने की जरूरत नहीं पड़ती। गणित के हिसाब, जो हजारों वर्ष पूर्व बन चुके हैं, अब उन पर फिर से प्रश्नचिह्न लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। जो परम्परा है वह धर्म नहीं है और जो धर्म है वह परम्परा नहीं है। जो धर्म परम्परा में सीमित हो गया वह प्रवहमान नहीं होता, वह तो मृत चट्टान की तरह हो जाता है। जैसे सौ वर्ष पुराना मकान मरम्मत चाहता है वैसे ही हजार वर्ष पुराना धर्म भी युग के अनुसार बदलाव चाहता है।

धर्म तो खोज है, शोध है। धर्म वह यात्रा है जहाँ व्यक्ति किसी लीक पर नहीं चलता, अपना रास्ता खुद खोजता है। आप जानते हैं महावीर और बुद्ध समकालीन हैं। इतना ही नहीं वे एक ही राज्य के थे बमुश्किल सौ-पचास मील की दूरी रही होगी, लेकिन महावीर को अपनी शैली से खोज करनी पड़ी। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि बुद्ध खोज न करें या बुद्ध यह सोचकर रुक जाएँ कि महावीर जो खोज करेंगे वह मेरे काम आ जाएगी। बुद्ध को अपनी खोज करनी पड़ेगी, महावीर को अपनी। धर्म कभी समुदाय नहीं होता, धर्म तो नितांत निजी, वैयक्तिक जीवन होता है। सामुदायिक खोज धर्म में काम नहीं आती, गणित और विज्ञान में काम आ सकती है। धर्म तो वैयक्तिक खोज है। भगवान पार्श्वनाथ महावीर से केवल ढाई सौ वर्ष पूर्व हुए थे, फिर महावीर को सत्य के शोध की क्या आवश्यकता थी ? जरूरत इसलिए आ पड़ी कि रास्ते अपने-अपने होते हैं सत्य को पाने के। सत्य तो एक ही है, लेकिन शोध के तरीके अलग हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं बार-बार कहता हूँ कि धर्म मात्र परम्परा नहीं है। जैसे युगीन संदर्भों में व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन आते हैं वैसे ही युगीन संदर्भों से व्यक्ति के धर्म में भी बदलाव आना चाहिए और अगर परिवर्तन नहीं होता तो शास्त्र और कुछ कहेंगे और तुम्हारा जीवन कुछ और; हमारे ग्रन्थ कुछ और संदेश देंगे और जीवन-शैली कुछ और चलेगी। धर्म संदेश देगा हजारों वर्ष पहले का और तुम जीवन जिओगे इक्कीसवीं शताब्दी का। दोनों में रात और दिन का फर्क पड़ जाएगा।

धर्म के बारे में गलियाँ नहीं निकालनी चाहिए। धर्म को राजमार्ग बनाएँ, ताकि वह सिद्धान्त बन जाए। अगर देख रहे हो कि पाँच हजार वर्ष पूर्व वेदों ने धर्म का कोई सिद्धान्त स्थापित किया या उपनिषदों ने कोई जीवन-शैली बनाई या आगम और पिटकों ने जीवन का मार्ग बताया, आज की स्थिति में देख रहे हो कि उन मार्गों पर चलना असंभव है तो गलियाँ मत निकालो, बल्कि जीवन के राजमार्ग का निर्माण करो ताकि ईमानदार जीवन व्यतीत कर सको। किसी गलत कार्य को करने से अधिक घातक यह है कि वह कार्य छिपकर किया जाए। सारे परिवर्तन ईमानदारी से किए जाने चाहिए। यदि मुनि को रात में प्रकाश की आवश्यकता है तो दरवाजा बन्द कर प्रकाश करने से अच्छा है दरवाजा खोलकर आवश्यकता पूर्ण की जाए। अपवाद मार्ग का सहारा लेकर भी व्यक्ति जब परम्परा से बँध जाता है तो वह चट्टानी धर्म बन जाता है, सरित प्रवाहमय धर्म नहीं।

धर्म को कभी सरोवर का रूप न दो, धर्म को नदिया बनाओ। उसे रुंधा हुआ मत रहने दो। विराट होने दो, सागर होने दो और तुम भी सागर के पथिक बनो, विराट के पथिक। अब, एक व्यक्ति चींटी को बचाने में धर्म मानता है, दूसरा बकरे की बलि देने को धर्म समझता है। क्या तुम सार्वजनिक धर्म को एक कर पाओगे। व्यक्ति की अपनी मानसिकता के आधार पर जीवन जीने की शैली और जीवन के धर्म का निर्माण होता है। जो शिव को मानता है वह शैव कहलाता है, जो जिन को मानता है वह जैन कहलाता है, जो ईसा को मानता है वह ईसाई कहलाता है, जो मुहम्मद को मानता है वह मुसलमान कहलाता है। ये सब तो कहने के धर्म हैं, लेकिन दूसरा धर्म जीने का धर्म है। कहने का और बताने का धर्म सदा सामुदायिक होता है, लेकिन जीने का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म वैयक्तिक होता है। चार लोगों ने मंच पर ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह या सत्यमय जीवन जीने की दीक्षा अंगीकार की, लेकिन आवश्यक नहीं कि वे चारों एक जैसा जीवन जीएँ। कोई दीक्षा लेकर ऊँचाइयों को छू सकता है और कोई पतन के गर्त में भी गिर सकता है, क्योंकि दीक्षा लेना सामुदायिक काम है और दीक्षा को जीना वैयक्तिक काम है। नियम सामुदायिक होते हैं और पालन वैयक्तिक।

संवत्सरी पर सामूहिक उपवास तो कर लिए जाते हैं, लेकिन क्या आत्मवास हो पाता है? प्रतिज्ञा सामूहिक हो सकती है, परन्तु पालन वैयक्तिकता पर निर्भर है। धर्म कोई प्रतिज्ञा नहीं है, कोई नियम या कानून भर नहीं है और न ही परम्परा भर है। भगवान महावीर ने कहा है, 'वत्थु सहावो धम्मो'—व्यक्ति की चेतना का मौलिक स्वभाव ही धर्म है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि धर्म को फिर से समझना आवश्यक है। हमने किसे धर्म माना है? हमने धर्मसभा या धार्मिक प्रवचन या सत्संग को ही धर्म मान लिया है; मंदिर में की जाने वाली पूजाओं को ही धर्म मान लिया है; कहीं जीवदया और पौषध करने को धर्म मान लिया है। नहीं, यह सामुदायिक धर्म हो सकता है, व्यक्तिगत धर्म नहीं। तुम प्रवचन-सभाओं में सबके साथ बैठकर बखान सुन रहे हो लेकिन संभव है मन में किसी आए हुए चेक को कैश कराने की सोच रहे हो या आज कौन-सी सब्जी बनाई जाए इसका विचार चल रहा हो। व्यक्ति का सामुदायिक जीवन कुछ और, व्यावहारिक जीवन कुछ और तथा निजी एवं व्यक्तिगत जीवन कुछ और ही होता है। इसलिए धर्म नितांत व्यक्तिगत वस्तु है।

धर्म मनुष्य का जीवन है। आज हमने सामुदायिक जीवन को ही धर्म मान लिया है। आपने देखा-सुना होगा कि मुसलमान दिन में पाँच बार नमाज अदा करते हैं, क्यों? क्या कभी इस पर विचार किया? सीधा-सा कारण है डॉक्टर रोगी को दवा देता है कि दिन में चार बार लेना, क्योंकि एक बार ली गई दवा का असर कुछ घण्टे रहेगा, फिर दूसरी खुराक लेने पर दवा का असर लगातार बना रहेगा। खुदा की याद निरन्तर बनी रहे, इसीलिए पाँच बार नमाज अदा की जाती है। सुबह-साँझ प्रतिक्रमण का विधान क्यों? ताकि बीच के समय में पापों से बचने का बोध बना रहे। सामुदायिक काम प्रतिक्रमण करना है, लेकिन सुबह से शाम तक स्वयं को अतिक्रमण से मुक्त रखना व्यक्तिगत कार्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म किसी का कहा हुआ मार्ग नहीं है। अगर किसी के बताने से ईश्वर की प्राप्ति हो जाती तो हर गुरु अपने शिष्य को ज्ञान दे देता, हर पिता अपने पुत्र को बता देता कि वह रहा ईश्वर और उसे इस ढंग से प्राप्त कर ले। बताने से जानकारियाँ मिलती हैं, बोध और अनुभव नहीं। किसी नक्शे में हिमालय, गंगोत्री, यमुनोत्री, बद्री और केदार देख सकते हो, लेकिन वहाँ की ठंडी हवाएँ, वहाँ का सौन्दर्य कैसे देख पाओगे ? नक्शे से तुम जानकारी प्राप्त कर सकते हो, अनुभव नहीं। हमारे शास्त्र भी नक्शे हैं। सत्य-प्राप्ति के लिए तो सागर में गोता लगाना ही पड़ेगा, तब ही मोती भी मिलेंगे।

स्वामी विवेकानंद, जिनके बचपन का नाम नरेन्द्र था, के मन में प्रश्न उठा कि क्या ईश्वर है ? वह संतों, ऋषियों के पास तलाशने गया कि क्या ईश्वर है ? वह भटकता रहा और पूछता रहा कि क्या किसी ने ईश्वर देखा है ? कहते हैं, खोजता-खोजता वह युवक रवीन्द्रनाथ टैगोर के दादाजी के पास पहुँचा। वे नौका में गंगा की धारा के मध्य अर्द्धरात्रि को ध्यान-साधना कर रहे थे। इस समय नरेन्द्र तैरता हुआ उनकी नौका पर पहुँचा और प्रश्न पूछा, 'क्या आपने ईश्वर को देखा है ?' दादाजी ने कहा, 'बैठो, मैं तुम्हें बताता हूँ।' उन्होंने विभिन्न ग्रंथों के उद्धरणों द्वारा ईश्वर को प्रमाणित करना चाहा। नरेन्द्र ने कहा, 'मुझे यह जवाब नहीं चाहिए कि किस ग्रंथ में क्या लिखा है। यह तो मैं खुद भी पढ़ सकता हूँ। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि क्या आपने ईश्वर को देखा है ?' और वह पानी में कूद गया। दादाजी ने कहा, 'रुको तो सही मैं बताता हूँ।' नरेन्द्र ने कहा, 'मैं ईश्वर का ज्ञान पाने नहीं आया हूँ, मैं तो यह पूछने आया हूँ कि क्या आपने ईश्वर को देखा है ?'

इसी तरह पूछते-पूछते वे कलकत्ता पहुँचे रामकृष्ण परमहंस के पास। और जैसे अन्य संतों से प्रश्न पूछते थे, वैसे ही परमहंस से पूछा, 'क्या आपने ईश्वर देखा है ?' रामकृष्ण पहुँचे हुए संत थे। उन्होंने कहा, 'चुप, मैंने ईश्वर देखा है या नहीं इस बात को छोड़ दे। क्या तुझे ईश्वर देखना है ?' नरेन्द्र ने तो यह सोचा भी न था कि ऐसा भी हो सकता है कि कोई मुझसे ही पूछने लगे। वह तो सोच में ही व्यस्त था कि उसके गाल पर जोर का चाँटा पड़ा। नरेन्द्र बेहोश हो गया और जब तीन दिन बाद होश आया तो रामकृष्ण ने पूछा, 'कोई प्रश्न ?' विवेकानन्द हाथ जोड़कर खड़े हो गए। ईश्वर का ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होता, उसे तो केवल अनुभव किया जा सकता है। क्या अलग-अलग मिठाइयों का स्वाद बता सकते हो ? नहीं, वह तो केवल खाकर ही अनुभव किया जा सकता है। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं—

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठूं ज्ञान मां
कही सक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो।
तेह स्वरूप ने अन्य वाणी तो शूं कहे,
अनुभव गोचर मात्र रह्यो ते ज्ञान जो।।

उस ईश्वर का, धर्म का, आत्मा का, परमात्मा का, मोक्ष का ज्ञान तो स्वयं भगवान भी नहीं कह पाये, उस ईश्वर की प्रस्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ। यह तो 'गूँगे केरी सर्करा' है। वही इसे पा सकता है जो इस मार्ग का अनुसरण करता है, उस राह पर चल पड़ता है।

मैंने सुना है, कहीं ईश्वर का प्रशिक्षण देने के लिए विद्यालय खुला। वहाँ एक व्यक्ति पहुँचा और बच्चों से पूछा, 'ईश्वर कहाँ है ?' जैसा कि बच्चों को सिखाया गया था, सभी एक साथ बोले, 'ईश्वर मनुष्य के हृदय में है।' उस व्यक्ति ने पूछा, 'हृदय कहाँ है ?' बच्चों ने कहा, 'यह हमें नहीं बताया गया।'

क्या आपको नहीं लगता कि हमारा बोध, हमारे जीवन की व्यवस्थाएँ भी इसी प्रकार की हैं। वे उस मृत चट्टान की तरह हो गई हैं जहाँ से कोई झरना नहीं फूटता, जहाँ कोई सरित-प्रवाह नहीं है। नदी बहती हुई विस्तीर्ण होती जाती है वैसे ही धर्म भी मनुष्य को विशाल बनाता है। जो धर्म संकीर्णता देता है वह नदी नहीं, नाला बन जाता है।

सूत्र है—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा-संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो।।

इस सूत्र में धर्म की जीवंत प्रस्तुति है। कहा गया है कि न तो धर्म जैन है और न ही हिन्दू, मुस्लिम, ईसाइयत, बौद्ध, सिक्ख धर्म है।

धर्म न हिंदू बौद्ध है, धर्म न मुस्लिम जैन,
धर्म चित्त की शुद्धता, धर्म शांति सुख चैन।

धर्म मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है, उसे देव भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमस्कार करते हैं। पहली बात है मंगल क्या है—मामू पापं गालयति सः मंगलमू—जिसका कभी विनाश नहीं होता, जो फिर से नष्ट नहीं होता, जो फिर से दुःख का कारण नहीं बनता, वही मंगल है। जिसके पाप गल गए हैं, वही मंगल है, लेकिन हमने मंगल किसमें जाना है ? संसार के वे 'मंगल' जो हमें अमंगल की दिशा में ले जा रहे हैं। घर में पौत्र का जन्म होता है, तुम उसे मंगल दिन मानते हो, लेकिन यही पौत्र तो तुम्हारी चिता को अग्नि देने वाला है, मंगल का अंत अमंगल में हो गया। तुम पुत्र की शादी करते हो। जीवन भर की कमाई शादी में उँड़ेल देते हो। मंगल गीत गाए जाते हैं। यह मंगल तब अमंगल में बदल जाता है जब पुत्र तुमसे अलग घर बसा लेता है और तुम एकाकी हो जाते हो। भगवान कहते हैं कि संसार के मंगल अंततः अमंगल की दिशा पकड़ते हैं।

भगवान कहते हैं—धर्म मंगल है। जैसे सुगंध सदा सुगंध ही रहती है, दुर्गंध सदा दुर्गंध ही रहती है, वैसे अधर्म सदा अमंगल और धर्म सदा मंगल रहता है। धर्म तो जीवन की सुगंध है, दिव्यता को पाने का सोपान है। धर्म को मात्र परम्परा मत मानो। धर्म को परम्परा मान लेने का परिणाम यह होगा कि तुम धर्म से भयभीत होओगे। फिर तुम नरक के डर से धर्म करोगे या स्वर्ग के प्रलोभन में। आज तुम्हारी यही स्थिति है कि तुम डर या प्रलोभन के कारण धर्म से जुड़े हो। तुम चढ़ावा चढ़ाते हो दुगुना पाने की उम्मीद से। धार्मिक पुस्तकों में अगर यह लिखा होता कि भगवान के भंडार में चाहे कुछ भी डालो, वापस कुछ नहीं मिलने वाला है तो दुनिया के सभी भगवानों के भंडार खाली ही रहते। मेरे देखे, जब तक धर्म में भय और प्रलोभन का समावेश है वह धर्म बाहरी धर्म बनकर रह जाता है। जीवन की आंतरिकता से उसका कोई मेल नहीं है।

मुझे याद है, दो युवक बैठे थे। उनके पास कोई काम न था। आखिर उन्होंने सोचा, ऐसे बेकार बैठे रहने की बजाय कुछ तो करना चाहिए। एक ने कहा, 'मित्र, एक धंधा दिमाग में आ रहा है।' दूसरे ने पूछा, 'क्या धंधा है ?' पहले ने कहा, 'जैसे धर्म का धंधा होता है वैसा ही एक नया धंधा दिमाग में आ रहा है।' दूसरे ने पूछा, 'क्या धंधा है ?' पहले ने कहा, 'तू रात को बाल्टी में कोलतार लेकर जाना और रास्ते के मकानों, खिड़की, दरवाजे और काँच पर कोलतार छिड़कते जाना।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे ने कहा, 'यह क्या धंधा हुआ, कोलतार भी जाएगा और मेहनत भी व्यर्थ लगेगी।'

पहले ने कहा, 'यहाँ तक तो घर का ही लगने वाला है, लेकिन धंधा तो अब होगा। अगले दिन हम दोनों कहेंगे कि कोलतार साफ करा लो, कोलतार, कोलतार....।'

धर्म के नाम पर चलने वाले धंधों और प्रलोभनों ने व्यक्ति को अज्ञान दिया है, मिथ्यामति और मिथ्यागति दी है। भगवान कहते हैं, 'धर्म तुम्हारे जीवन का उत्कृष्ट मंगल है।' धन से व्यक्ति सुखी होता है और आत्मस्थित होने से वह आनंदित होता है। धन से सुविधाएँ मिल सकती हैं, शांति नहीं। शांति तो तभी मिलेगी, जब तुम्हारा जीवन मंगलमय होगा।

हमारे यहाँ तो जुगाड़ लगाई जाती है। अमेरिका से एक वैज्ञानिक अपना नवीनतम कम्प्यूटर लेकर आया। वह यहाँ उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन करना चाहता है। उसने कम्प्यूटर चालू किया, लेकिन स्क्रीन पर कुछ दिखाई न दे। बहुत कोशिश की पर नाकामयाब। तब भारत के वैज्ञानिक को बुलाया गया। उसने कुछ तार निकाले, कुछ इधर से उधर, उधर से इधर जोड़े कि स्क्रीन पर सब दिखाई देने लग गया। अमेरिकी वैज्ञानिक ने पूछा, 'यह कौन-सी टैक्नोलॉजी है।' 'जुगाड़ टैक्नोलॉजी' भारतीय वैज्ञानिक ने जवाब दिया।

अब उसे पाकिस्तान जाना था तो वह कार में सवार हुआ। यह क्या, कार भी नहीं चल रही। एक मैकेनिक को बुलाया गया। उसने कार पर हथौड़े चलाए। अमरीकी घबराया कि उसकी कार गई, पर क्या कर सकता था। मैकेनिक ने दो-चार हथौड़े चलाए, कुछ तार इधर-उधर किए, कुछ ठोक-पीट की और कार चल पड़ी। वैज्ञानिक हैरान, उसने पूछा, 'यह कौनसी टैक्नोलॉजी है।' फिर वही उत्तर—'जुगाड़ टेक्नोलॉजी'।

जब वह वापस अमेरिका पहुँचा तो राष्ट्रपति को फोन किया कि 'हम भारत से जुगाड़ टैक्नोलॉजी आयात करें, बड़े काम की और कीमिया चीज है।' राष्ट्रपति ने भारत के प्रधानमंत्री से आयात के संबंध में बात की। प्रधानमंत्री ने कहा, 'यह टैक्नोलॉजी हर्गिज निर्यात नहीं की जाएगी। पूछा गया क्यों ? प्रधानमंत्री ने जवाब दिया, क्योंकि इसी से तो मेरी सरकार चल रही है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब एक ऐसा धर्म लेना चाहिए, जो समग्र विश्व की मंगल कामना का पाठ पढ़ाता हो। वह धर्म ऐसा हो कि मनुष्य के अंतर्तम में सारे अस्तित्व के प्रति मैत्री का भाव पनपा दे। तब उसे फूल तोड़ने में भी महसूस हो कि अपने शरीर के ही किसी अंग को चोट पहुँचा रहा है। जब ऐसी मैत्री हो जाएगी तब धर्म का पहला लक्षण अहिंसा प्रगट होगा। हमने अभी तक अहिंसा के नकारात्मक पहलू को ही देखा है। अहिंसा का सकारात्मक पक्ष भी है। चींटी न मारना नकारात्मकता है। लेकिन घायल चींटी का उपचार करना सकारात्मक पक्ष है। किसी को दुःख न देना अहिंसा का एक पक्ष है और सुख पहुँचाना अहिंसा का दूसरा पक्ष। आज तक केवल एक ही पक्ष देखा गया। परिणामतः पिछले ढाई हजार वर्षों से हम चींटियों को तो बचाते आए, लेकिन मनुष्य के कल्याण के लिए किसी विशाल योजना का निर्माण न कर सके। महावीर तो वे कल्याणक पुरुष हैं जो याचक को अपना उत्तरीय भी उतार कर देने को तैयार हैं, क्योंकि यह अहिंसा का मैत्री-प्रधान पक्ष है। यह अहिंसा का करुणा पक्ष है, प्रमुदितता-प्रधान पक्ष है। धर्म में अहिंसा के दोनों पक्षों से जीवंतता आती है।

महावीर ने अहिंसा का, बुद्ध ने करुणा का और जीसस ने प्रेम का मार्ग दिया। इन तीनों का संयोजन ही धर्म का सर्वोत्तम रूप है। बिना प्रेम के करुणा अधूरी है और बिना अहिंसा के प्रेम अधूरा। ये सब अन्योन्याश्रित हैं। अहिंसा, करुणा और प्रेम धर्म का सार्वभौम रूप निर्मित करते हैं। लेकिन हमारे यहाँ जोड़-तोड़ की राजनीति चलती रहती है और यह जोड़-तोड़ ही मनुष्य को धर्म के मूल रहस्य तक नहीं पहुँचने देता।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, जिसकी दो भुजाएँ हैं—पहली है अहिंसा और दूसरा है संयम। संयम, इंद्रियों का संयम, विचार का संयम। हम तो किसी गुरु के पास जाते हैं, कोई नियम ले लेते हैं, बस, हो गया संयम। लेकिन यह तो बाह्य और सामुदायिक संयम है। एक आंतरिक संयम भी होता है, वह है भीतर की विचारधारा का शुद्धिकरण। यह वैयक्तिक संयम है और यही संयम जीवन का संयम बनता है। संयम क्या है ? संयम है—सं+यम=स्वयं पर नियंत्रण। जिस कार में सबकुछ हो, पर ब्रेक न हो तो वह विनाश का कारण बन सकती है, वैसे ही संयम हमारे जीवन में ब्रेक का कार्य करता है कि जब-जब व्यक्ति सीमा-रेखाओं को पार करे, वह स्वयं पर नियंत्रण लगा सके।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान कहते हैं कि धर्म का दूसरा सोपान संयम है और तीसरा सोपान तप है, साधना है।

जहाँ व्यक्ति आत्मचेता होकर स्वाध्याय और ज्ञान के मार्ग का अनुसरण करता है, वहाँ तप-धर्म सध जाता है। ध्यान और स्वाध्याय तप के मार्ग हैं। भगवान ने मुनि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में संयम का पालन किया, दूसरे, अहिंसा का जीवन जिया और तप में स्वयं को अनुरक्त किया। यही मुक्ति का मार्ग है। चंडकौशिक डँस रहा है तब भी कोई प्रतिक्रिया नहीं और कोई कान में कीलें ठोक रहा है तब भी निश्चलता। सिर्फ मैत्रीभाव, करुणा और वात्सल्य का भाव।

तप की यात्रा में जहाँ स्वाध्याय, आत्मबोध और ध्यान का समवेत स्वर निकलता है, वहीं तप की वीणा झंकृत होती है। अहिंसा, संयम और तप का पालन ही सच्ची आराधना है, सच्चा धर्म है। जिसका मन सदा धर्म में रत रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं--देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो। अभी तो तुम देवों को मना रहे हो, फिर तुम्हारी आस्था को देखकर देवता भी नमस्कार करेंगे। जिसके अन्तर्प्राणों में, अंतस् की धड़कनों में, श्वास में धर्म पल-प्रतिपल आविर्भूत हो रहा है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

औ जग हाट बाजार बावरा, तू बण आयौ ब्यौपारी।
चतुर करें चौगणा रे मूरख, पूंजी खा जावे सारी।।

हिवड़े हाथ धरौ और सोचो काम कांई-कांई करणो।
दान, दया, तप, शील, धरम सूं खाली घड़ो है भरणो।
अक्सर चूक गयो तो समझ ले जीती बाजी थैं हारी।।

हिवड़े हाथ धरौ और सोचो काम कांई-कांई करणो।
ध्यान धरौ, संयम धारौ लौ भगवंतां रो शरणो।
परनिंदा और रागद्वेष ने छोड़ो, बणो सदाचारी।।

हिवड़े हाथ धरौ और सोचो काम कांई-कांई करणो।
ज्ञानीजन रे साथ बैठकर भजन प्रभु रो करणो।
प्रभु भक्ति सूं मुगति मिलसी, भगती री सगती भारी।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औ जग हाट बाजार बावला....। यह संसार तो किसी हाट-बाजार की तरह है, जहाँ हर प्राणी किसी व्यापारी का रूप धरकर आता है। अपनी चतुराई का उपयोग करता है। कोई तो अपने धन को और चौगुना कर लेता है, तो कोई मूर्ख जो पूंजी साथ लेकर आता है, उसे भी खा-पीकर चौपट कर जाता है। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम मूर्खता के मापदंड अपनाते हैं या बुद्धिमानी का उपयोग करते हैं। किसी को न सताना, आत्मनियंत्रण रखना और अनुकूल-प्रतिकूल हर परिस्थिति में समत्वशील रहना—बस यही है धर्म का सार, धर्म का स्वरूप, धर्म का जीवन। धर्म हमारे जीवन की रोशनी बने, प्रेरणा बने, सुख-शांतिपूर्वक जीवन का आधार बने। बस, यही है धर्म का मर्म, धर्म का बीज।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक जगे, अधार्मिक सोए

परमात्मा को पाने के दो मार्ग हैं—एक, गंगोत्री से गंगासागर की ओर जाने का, और दूसरा, गंगासागर से गंगोत्री की ओर लौटने का। जो गंगोत्री से गंगासागर की तरफ जा रहा है, वह भी परमात्मा की खोज में है, दूसरा, जो गंगासागर से गंगोत्री की ओर बढ़ रहा है वह भी परमात्मा की ओर ही जा रहा है। परमात्मा को पाने का पहला मार्ग है समर्पण का और दूसरा है संकल्प का। समर्पण के मार्ग में व्यक्ति परमात्मा के चरणों में स्वयं को, स्वयं की अहमियत को समर्पित कर देता है। उसका भाव होता है कि जो कुछ है परमात्मा का है, मेरा कुछ भी नहीं। मीरां का समर्पण देखा है आपने ? जो मीरां का था, वह सब कुछ कृष्ण का। समर्पण के बाद व्यक्ति शंका नहीं करता। हमारी श्रद्धा में भी शंका है, अधूरापन है। तुम मंदिर जा रहे हो और रास्ते में पत्थर से टकरा कर चोट लग गई तो क्या कहोगे ? दर्शन करने जा रहा था और भगवान ने हड्डी तोड़ दी।

तुम भगवान से कामनाएँ करते हो, मनौतियाँ माँगते हो, अगर पूर्ण हो जाएँ तो ठीक और अगर पूर्ण न हों तो तुम भगवान को मानना ही छोड़ देते हो। यह तुम्हारा उसके प्रति समर्पण नहीं है। केवल एक विश्वास है। इसमें श्रद्धा कम स्वार्थ ज्यादा है। लेकिन जहाँ श्रद्धा और समर्पण का संग हो जाए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ मीरा के लिए विष का प्याला भी अमृत बन जाता है। सड़क पर चलने वाले लोग उसकी चाहे जितनी बदनामी करें, उसकी श्रद्धा खंडित होने वाली नहीं। परिवार के लोग भले निंदा करें, पर मीरां अपने पथ से डिगने वाली नहीं। उसकी श्रद्धा अटूट है। रामकृष्ण को चाहे कैंसर हो गया, पर देवी माँ के प्रति उनकी श्रद्धा वैसी-की-वैसी बनी रही।

भगवान कहते हैं समर्पण वह, जहाँ 'मैं' न रहा, 'वह' ही 'वह' रह गया। 'नर' मिट गया 'नारायण' प्रगट हो गया, चेतना की वट अवस्था ही समर्पण कहलाती है। जहाँ भक्त का अस्तित्व भगवान में विलीन हो जाता है वहाँ समर्पण होता है। समर्पण वह जहाँ 'अहं' का अस्तित्व समाप्त हो गया और 'अर्हम्' जाग्रत हो गया। समर्पण में खोने और पाने को कुछ नहीं होता। जिस मीरां ने राजमहलों में सारी भौतिक सुख-सुविधाएँ पाई थीं, लेकिन जब गली-गली में गाने लगीं तो भी कोई शिकायत न की। सास ने 'कुलनासी' कहा, राणा ने विष का प्याला भेजा, लोगों ने पत्थर मारे और 'बावरी' कहा, लेकिन मीरां में जरा भी अंतर न आया, उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। जहाँ व्यक्ति ने अपने अस्तित्व को परमात्मा में विलीन कर दिया, वह उन बातों को ग्रहण नहीं करता जो उसके नाम को सम्बोधित करके दी जाती हैं, क्योंकि नाम भी तो उन्हीं लोगों ने दिया है। वह तो सबकुछ परमात्मा को सौंप देता है, गाली भी, गीत भी। गंगा तो गंगासागर में मिल गई है। अब अगर पानी खारा हो जाए तो उसका क्या दोष ! उसने तो अपना अस्तित्व विराट में लीन कर दिया !

मीरां तो जहर पीकर भी नाच रही थी। राणा ने भेजा विष और वह चरणामृत समझकर पी गई। राणा को पता चला तो उसने सैनिक को बुलाया और पूछा कि तुमने उसमें क्या मिला दिया था कि मीरां अभी भी जीवित है। सैनिक ने कहा, 'मैंने तो कुछ भी नहीं मिलाया, बस ले जाकर कहा कि राणा जी ने आपके लिए चरणामृत भेजा है।' श्रद्धा हो, समर्पण हो तो विष भी चरणामृत ही बन जाता है और मीरां—'राणाजी भेज्या विष का प्याला, पीवत मीरां हांसी रे।' मीरां तो मोहन हो गई। इतना गहरा समर्पण कि परमात्मा जहाँ बहा दे, बहे जाओ।

दूसरा मार्ग है संकल्प का, महावीर और बुद्ध का मार्ग। जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व को परमात्मा में विलीन नहीं करता, अपितु अपने अंदर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परमात्मा को जाग्रत करता है। अपने अंदर सोई हुई ईश्वरीय शक्तियों को जगाता है। एक तो भगवान अवतार लेते हैं और मनुष्य बनते हैं, दूसरे मनुष्य अपना विकास करता है और आत्मशुद्धि करते हुए स्वयं भगवान बन जाता है। बुद्ध और महावीर आत्म-संकल्प करके अगर साधना की ओर कदम बढ़ा देते हैं, फिर वहाँ कोई शिथिलता नहीं है। तब उनके जीवन में आने वाली विपदा या उपसर्ग, कोई संकट या उपद्रव उसे प्रभावित नहीं कर पाते। हमें तो किसी के दो कड़वे शब्द भी प्रभावित कर देते हैं, लेकिन उनके कानों में कीलें भी ठोक दी जाएँ तो वे प्रभावित नहीं होते। उन्हें कोई नाग डस ले तो भी वे निश्चल खड़े रहते हैं, पाँवों के बीच अँगीठी जला दे, तो भी शांत बने रहते हैं, क्योंकि वहाँ आत्म-संकल्प है, 'सबकुछ सह लूँगा, पर साधना से पीछे नहीं हटूँगा।'

समर्पण में व्यक्ति स्वयं को परमात्मा में लीन कर देता है और संकल्प में व्यक्ति भीतर छिपे परमात्मा को जाग्रत करता है। समर्पण के मार्ग में धारा के साथ बहना है और संकल्प के मार्ग में धारा के विपरीत तैरना है। साधना के लिए संकल्पशील व्यक्ति साधना से डिगता नहीं। वह सबकुछ स्वीकार करने को तैयार है, लोग पत्थर फेंक रहे हैं तो पत्थर स्वीकार, पीछे अगर कुत्ते छोड़े जा रहे हैं तो कुत्तों का काटना भी स्वीकार, कुएँ में लटकाया जा रहा है तो वह भी स्वीकार, नाव को हिलाकर पानी में गिराने का प्रयत्न किया जा रहा है तो यह भी स्वीकार; वह साधनारत संकल्पशील व्यक्तित्व किसी भी प्रकार का व्यवधान अपनी ओर से नहीं देता। संकल्प और समर्पण दोनों ही मुक्ति देते हैं। आप अपने आपको तौलें कि आपके लिए दोनों में से कौन-सा मार्ग अनुकूल होता है। जीवन में दोनों में से एक को जरूर अपना लें। समर्पण कि फिर वहाँ कुछ न बचे या संकल्प कि तमाम कष्ट आने पर भी साधना-मार्ग से विचलित न हों।

संकल्प का मार्ग जागे हुए लोगों का मार्ग है। जो जीवन में जाग जाता है वही संकल्प का धनी और स्वामी होता है। जिसने जीवन में होश, जागरूकता, विवेक पा लिया, उसने जागरण का सूत्र भी पा लिया। तुमने देखा, तुम्हारी पत्नी को कैंसर हो गया। दो साल तक अतिशय वेदना झेलने के बाद उसकी देह का विसर्जन हुआ। इसके उपरान्त भी तुम्हारे अंदर किसी जागृति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का शंखनाद नहीं होता। भगवान कृष्ण का पाँचजन्य शंख मनुष्य को जगाने वाला नाद है। तभी तो कोई धन्ना जैसा व्यक्ति जाग जाता है। पत्नी की आँखों में आँसू देखकर धन्ना सेठ आँसू का कारण पूछता है। पत्नी बताती है, 'मेरा भाई साधु बनने वाला है। वह संन्यास के पथ पर अग्रसर हो रहा है। उसने भगवान का प्रवचन सुना और इतना प्रभावित हुआ कि रोज एक-एक पत्नी का त्याग कर रहा है। सोलह को तो त्याग चुका है, सोलह और हैं, उन्हें भी एक-एक कर छोड़ देगा। फिर भगवान की शरण में चला जाएगा, संन्यास ग्रहण कर लेगा।' धन्ना ने कहा, 'इसमें रोना क्या ?' पत्नी ने कहा, 'भाई साधु बनेगा तो क्या मुझे रोना नहीं आएगा ?' 'अरे, ऐसा भी क्या वैरागी कि एक-एक पत्नी छोड़ रहा है। लगता है अभी काम-भोग की इच्छा से मुक्त नहीं हुआ है। जिसे छोड़ना होता है वह एक-एक कर नहीं, सभी को एक साथ छोड़ देता है।' पत्नी ने कहा, 'मान लिया, मेरा भाई कायर है, लेकिन तुम भी तो भगवान के प्रवचन सुनकर आए थे, तुम्हारा क्या हुआ ? वह तो एक-एक पत्नी छोड़ रहा है तुम तो कुछ भी न छोड़ पाए। तुम्हारे भी आठ पत्नियाँ हैं, तुम उन्हें छोड़ कर दिखाते।' वह उसकी पीठ पर उबटन लगा रही थी। धन्ना ने उसके वचन सुने और तुरन्त उठकर खड़ा हुआ और घर के बाहर निकल गया। वस्त्र भी पूरे न पहने थे, पत्नी ने कहा, 'यह क्या कर रहे हो ?' धन्ना बोला, 'तूने जो कहा, वही करके दिखा रहा हूँ। अब तो भगवान के चरणों में जाऊँगा और मुक्ति-पथ का अनुसरण करूँगा।' पत्नी ने कहा, 'लेकिन मैं तो मजाक कर रही थी।' 'तेरा मजाक मेरे संन्यास का आधार बन गया है'—धन्ना ने कहा और चला गया।

मजाक भी जाग्रत लोगों के लिए क्रांति का संदेश लेकर आता है, जीवन की क्रांति का। भगवान बुद्ध कहते हैं जाग्रत कौन ? संत कौन ? जो सोते हुए भी जागता है अर्थात् सावचेत रहता है वही संत है। हम तो जागे हुए दिखाई पड़ते हैं, लेकिन तब भी सोए हुए ही हैं। हमारा चेतन निद्रा में, मूर्च्छा में है। हम तो खुली आँखों में भी सोए हैं, लेकिन जो बंद आँखों में भी जागा रहता है, वही जाग्रत-पुरुष है। अतः हे मनुष्यो, सतत जाग्रत रहो। बेहोशी एक क्षण भी जीवन को प्रमादग्रस्त कर देती है। महावीर भगवान ने गौतम को संदेश दिया था, 'समयं गोयम मा पमायए ।' गौतम एक क्षण के लिए भी निद्राग्रस्त न होना, एक क्षण के लिए भी प्रमाद मत करना। यह तो जाग्रति का समय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है गौतम, सतत जाग्रत, सचेष्ट और होशवान बने रहना। मुहूर्त बड़े निर्दयी होते हैं। शरीर कभी भी दगा दे सकता है।

हमारे आज के सूत्र हैं—

सीतंति सुवंताणं अत्था पुरिसाण लोगसारत्था।
तम्हा जागरमाणा विधुणध पोराणयं कम्मं।।

'जो पुरुष सोते हैं उनके सारे अर्थ जगत में नष्ट हो जाते हैं, इसलिए सतत जाग्रत रहकर पूर्वार्जित कर्मों को प्रकंपित करो।"

ऐसा लगता है जैसे महावीर के वचनों का समस्त सार इन सूत्रों में समा गया है। महावीर के ये सूत्र जागरण-सूत्र हैं। इनका सार है—जागो। जागरण का वह अर्थ नहीं है जो तुम समझते हो। तुम्हारा जागरण तो नींद से निवृत्ति भर है। महावीर कहते हैं—जागरण चित्त की वह दशा है, जहाँ विचार का कोई आवरण न हो, शुद्ध चैतन्य हो। तुम जैसे हो उसका परम स्वीकार। जगत को खुली आँखों से देख लो तो तुम्हारी जिन्दगी में पहली दफा जागरण की यात्रा शुरू होगी।

जो पुरुष सोते हैं उनके सारे अर्थ जगत में नष्ट हो जाते हैं। कितना गहन अर्थ है कि जो सोते हैं उन्हें जीवन का अर्थ नहीं मिल पाता। इस जगत में बोध ही सारभूत अर्थ है। हमारे अपने अर्थ हैं, लेकिन उन अर्थों से क्या हासिल होता है ? सिकंदर, नेपोलियन साम्राज्य बढ़ाने में जीवन का अर्थ देख रहे हैं। तुम धन, पद, प्रतिष्ठा में जीवन का अर्थ देख रहे हो। कोई कुछ और में जीवन का अर्थ देख रहा है। महावीर के लिए ये सब अर्थ निरर्थक हैं। इनसे जीवन में कुछ मिलता नहीं है। जब तुम जाते हो तो ये सांसारिक चीजें यहीं छूट जाती हैं, इसलिए बोध, होश और जागरण को प्राप्त करो, यही जीवन का वास्तविक अर्थ है।

मुझे याद है, तीन दोस्त घूमने गए। साँझ ढल रही थी, सोचा, यहीं खाना बना लें। अन्य कुछ तो बना नहीं सकते थे। अतः विचार किया कि खीर बना लेते हैं, उसे ही बनाना सबसे सरल है। दूध उबालो, चावल डालो, चावल पक जाएँ तो शक्कर डाल दो, बस खीर तैयार। ऐसा ही किया। गाँव से दूध, चावल, शक्कर, इलायची वगैरह ले आए, खीर बनाई और तीनों ने छककर खाई। खाने के बाद आलस आने लगा। तीनों ने विचार किया कि आज यहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो जाते हैं, कल सुबह चले जाएँगे वापस अपने गाँव। खीर उन्होंने पेट भर खाई थी फिर भी एक प्याला खीर बच गई। 'अब तो पेट में जगह नहीं है, सुबह उठकर खा लेंगे', एक ने कहा। दूसरा बोला, 'लेकिन खीर तो एक प्याला है और खाने वाले तीन, फैसला हो जाए कि सुबह कौन खाएगा ?' दोस्त ने कहा, 'अब इसमें फैसला क्या करना ? रात में जिसको सबसे अच्छा सपना आएगा वही खीर खा लेगा। सुबह सब अपने-अपने सपने सुना देंगे।' यह तो बहुत अच्छी बात थी, तीनों को जम गई और तीनों सो गए।

रात तीन-चार बजे होंगे, एक मित्र उठा, सोचा, पता नहीं कौन कैसा, क्या सपना बताए और कौन निर्धारण करेगा कि किसका सपना अच्छा ? बस खिड़की में से उसने खीर का प्याला उठाया और सारी खीर खा गया। खीर खाकर फिर सो गया। सुबह हुई, दोस्तों ने कहा, 'अपने-अपने सपने सुनाओ।'

एक दोस्त ने कहना शुरू किया, 'रात को सपने में मुझे भगवान राम अयोध्या ले गए। माता सीता के दर्शन कराये। पिता दशरथ से मिलवाया और पूरी अयोध्या नगरी का भ्रमण कराया। माता सीता ने अपने हाथ से मुझे भोजन कराया, मैं कितना पवित्र हो गया। मुझसे अच्छा सपना किसी ने न देखा होगा। मैंने सभी के दर्शन कर लिए। अब खीर का प्याला मैं खाऊँगा।'

दूसरे ने कहा, 'अब तू बैठ जा, तूने मेरा सपना अभी कहाँ सुना है। जरा मेरा सपना भी तो सुन। रात को भगवान शिव आए और मुझे हिमालय ले गए। वहाँ उन्होंने मुझे सभी तीर्थों के दर्शन कराए, चारों धाम दिखाए, माँ पार्वती के दर्शन कराए। मैं तो सभी के दर्शन कर आया हूँ। कैलाश के दर्शन, अष्टापट पर आदिनाथ के दर्शन। मुझ जैसा तेरा सपना नहीं है, इसलिए खीर मैं खाऊँगा।' दोनों झगड़ने लगे। दोनों अपने-अपने सपने को श्रेष्ठ बताने लगे। इतने में तीसरे ने कहा, 'तुम दोनों शांत हो जाओ और मेरा सपना भी सुन लो।'

उसने कहना शुरू किया, 'मैं तो रात भर आराम से सोया था कि अचानक हनुमानजी गदा लेकर आए और धमका कर कहने लगे कि खड़ा हो जा। मैंने कहा कि हनुमानजी, आपकी अप्रसन्नता का कारण क्या है ? उन्होंने मुझे गदा दिखाई। मैं चुपचाप हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।' दोस्तों ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूछा, 'फिर क्या हुआ ?' 'चल खिड़की के पास', हनुमानजी बोले। मैं खिड़की के पास गया। हनुमानजी ने कहा, 'चल उठा खीर का प्याला, खा।' मैंने कहा, 'हनुमानजी ! क्षमा करें मेरे दो दोस्त और हैं, वे बुरा मानेंगे। हनुमानजी ने गदा दिखाते हुए कहा कि खाता है या नहीं.....। मैं तो एकदम डर गया और प्याला उठाकर खीर खा गया।' दोस्तों ने कहा, 'तुम सपने की बात कर रहे हो या....?' वे झट से खड़े हुए, खिड़की के पास गए और देखा कि खीर का प्याला खाली था। उन्होंने कहा, 'तूने तो गजब कर दिया, सपने को हकीकत में बदल दिया। लेकिन तूने हनुमानजी से यह क्यों नहीं कहा कि मेरे दो दोस्त और है, उन्हें भी खीर खिला दूँ।'

'मैंने तो कहा था, बिल्कुल यही कि मेरे दो दोस्त और हैं, तो हनुमानजी ने कहा कि दो में से एक अयोध्या गया है और दूसरा कैलाश पर्वत पर, यहाँ कोई नहीं है, तू अकेला है।'

तुम सपनों को भी सच समझ लेते हो। इसलिए भगवान कहते हैं कि जो सोता है उसके अर्थ नष्ट हो जाते हैं। सोए हुए को कुछ भी हासिल नहीं होता। यहाँ तो लोग खुली आँखों से सोते हैं। पतंजलि ने योगसूत्र में मनुष्य के चित्त की तीन दशाएँ कही हैं—एक है सुषुप्ति, दूसरी है जाग्रत और तीसरी दशा है स्वप्न। जिस अवस्था में हम हैं वह स्वप्न की अवस्था है। स्वप्न यानी संसार। सुषुप्ति अर्थात् बेहोशी। हम इस बात से बेखबर ही हैं कि हम स्वप्न में हैं। जिंदगी तो चली ही जा रही है इस आपाधापी में कि कुछ पा लें, पर हाथ में सिवाय राख के कुछ नहीं लगता। जिंदगी से पाया तो कुछ नहीं, एक नई मौत पाई, फिर जन्मने की वासना कमाई।

स्वप्न दशा से बाहर निकलने के दो ही उपाय हैं कि या तो सुषुप्ति/बेहोशी में डूब जाओ या महावीर, बुद्ध और पतंजलि की तरह जाग्रत हो जाओ। तुम जिसे जागरण कहते हो वह खुली आँखों का सपना है और महावीर, बुद्ध या पतंजलि जिसे जागरण कहते हैं वह उस दशा का नाम है, जब तुम्हारा मन ऐसा निष्कलुष होता है कि उसमें विचार, विकार और विकल्प की एक भी तरंग नहीं उठती। जब तक तुम्हारे अंदर पाने की आकांक्षा मौजूद है तुम स्वप्न में हो। फिर तुम्हारी आँखें खुली हैं या बंद इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, तुम बेहोश हो। महावीर के लिए तो होश तभी है जब तुम्हारा चित्त निर्विचार हो, निर्विकार हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति अपने पुत्र को पास बुलाता है और कहता है, 'मकान के पिछवाड़े आँगन में धन गड़ा हुआ है निकाल लेना।' वह उठता है, सोचता है, सुबह-सुबह इतनी क्या जल्दी है। सूरज तो उग ही रहा है, पूरा दिन है कभी भी खोदकर निकाल लेंगे। सोया रहा, न उठा। दोपहर में सोचा कि चलो अब निकाल लेते हैं। लेकिन उफ, इतनी धूप, इतनी तेज गर्मी, कैसे खुदाई करूँगा? अच्छा, साँझ ढलेगी तब निकाल लूँगा। शाम के वक्त कुदाली लेकर चला खुदाई करने, अभी दो-चार बार कुदाली ही चलाई होगी कि सूरज ढल गया, अँधेरा घिर आया, अब कैसे धन निकाले ? हमारा जीवन भी ऐसे ही चलता है। हम जागरण का उपाय नहीं करते। बस, टालते चले जाते हैं। जीवन के सारभूत अर्थ भी कल पर टलते चले जाते हैं।

क्या तुम जगत में कम भटके हो, क्या कम दुःख भोगा है ? अब इन जड़ों को और मत सींचो। लेकिन जब तुम्हें कोई जगाता है तो वह तुम्हें अपना नही मालूम पड़ता, कभी-कभी तो दुश्मन ही लगता है। तभी तो तुम सुकरात को जहर पिला देते हो, जीसस को क्रॉस पर लटका देते हो या महावीर को पत्थर मारते हो और कानों में कीलें ठोंकते हो। ये सब तो तुम्हारी नींद तोड़ने आये थे, स्वप्नों से जगाने आए थे। मेरे पास भी लोग आते हैं। कभी-कभी मैं युवकों से कहता हूँ कि कुछ धर्म की ओर मुड़ो, संसार में कामना और तृष्णा का जाल है इससे मुक्त होओ। अपने शिवस्वरूप को पहचानो। तब युवक कहते हैं कि महाराजजी, अभी तो सारी उम्र पड़ी है, जरा संसार भी तो देख लें, फिर बुढ़ापे में धर्म ही तो करना है। उनके अभिभावक भी यही कहते सुने जाते हैं। धर्म को बुढ़ापे की चीज मान लिया गया है। लेकिन वह नहीं जानता कि बुढ़ापा आ पाएगा या नहीं। जो तुम अभी नहीं करना चाहते, वह जर्जर शरीर कैसे कर पाएगा? ओह, मूर्च्छा बड़ी गहरी है।

व्यक्ति शराब पीने से बेहोश नहीं होता, बेहोश है इसलिए शराब पी रहा है। संसार में पैदा होने से व्यक्ति संसार में आसक्त नहीं होता, आसक्त है इसलिए संसार में जी रहा है। जो सपनों में जीते हैं, वे मौका पड़ने पर भी जाग्रत नहीं होते और बिना जागरण के जीवन में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। सोए हुए पुरुषों का सारभूत अर्थ नष्ट हो जाता है, इसलिए भगवान कहते हैं—जागो, सतत जाग्रत रहो, निरंतर जागते रहो। आपने शायद भगवान बुद्ध की सोई हुई, लेटी हुई प्रतिमा देखी होगी। वे एक ओर करवट लेकर सोए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए दिखाई देते हैं। सामान्य रूप से लेटी हुई प्रतिमा सीधी होती है, लेकिन बुद्ध की प्रतिमाएँ एक ओर करवट ली हुई होती हैं। जानते हैं क्यों ? उनके बारे में कहा जाता है कि वे जिस करवट सोते थे, जिस दिशा में मुँह करके सोते थे, सुबह उसी करवट, उसी दिशा में उठते थे। यह उनके जीवन की विशेषता थी।

शिष्य पूछा करते थे कि ऐसा कैसे संभव हो पाता है, क्योंकि वे स्वयं सोते कहीं हैं और उठते कहीं और हैं। उत्तर दिशा में मुख करके सोए हो तो दक्षिण दिशा में सुबह होती है। एक करवट सोते हैं, दूसरी करवट उठते हैं। भगवान ने कहा, 'यह शरीर जागे-जागे सोता है।' तुम्हें नींद में भी बोध रहना चाहिए कि तुम सो रहे हो। यह तभी संभव है जब व्यक्ति जागरूकता के साथ जीवन जीता है। भगवान कहते हैं कि न स्वप्न में जिओ, न सुषुप्ति में, वरन् जाग्रत अवस्था में जिओ। सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मों को नष्ट करो।

भगवान कहते हैं कि अर्थ बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर है। तुम अपने होश को, बोध को और विवेक को जाग्रत करो। तब तुम्हारे अंदर धर्म प्रकट होगा। जो जागे हुए हैं वे धार्मिक हैं और जो सोए हुए हैं वे अधार्मिक। यतना में धर्म है, विवेक में धर्म है, जागृति और होश में धर्म है। धर्म मूर्च्छा और प्रमाद में नहीं है। मूल्य हिंसा का नहीं है, मूल्य है विवेक-अविवेक का, यतना-अयतना का। महावीर की पूरी प्रक्रिया यह है कि तुम जागो और जागने के साथ ही तुम धार्मिक होते चले जाओगे।

इतना विवेक रखो कि गेहूँ के साथ घुन न पिस जाएँ। भोजन बनाओ तो इतने होश और जागरूकता से कि भोजन बनाना भी पाप से मुक्त होने का निमित्त बन जाए। जाग जाओगे, तब भी कर्म तो जारी रहेगा, लेकिन तब कर्म बंधनकारी नहीं होंगे। उसके कर्म प्राकृतिक, नैसर्गिक कर्म होते जाएँगे। आखिर महावीर भी केवलज्ञान उपलब्ध होने के बाद कोई चालीस वर्षों तक जिए, तो कर्म भी किया ही। उठे भी, सोए भी, भोजन भी किया, उपवास भी किया, ध्यान भी किया और मौन भी रहे, बोले भी, चुप भी रहे—सब प्रकार का कर्म चलता रहा। लेकिन यह कार्य अब बाँधता नहीं है, क्योंकि इस कर्म में मूर्च्छा नहीं है। जो हो रहा है वह जागकर हो रहा है। अपने जीवन को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यवस्था दो, होश लाओ। जहाँ चलकर पहुँचा जा सकता है, वहाँ दौड़कर न पहुँचा जाए। बेहोशीपूर्वक मौन से, होशपूर्वक बोलना कहीं ज्यादा अच्छा है।

सूत्र है—

जागरिया धम्मीणं, अहम्मीणं च सुत्तया सेया।
वच्छाहिवभगिणीए, अकहिंसु जिणो जयंतीए।।

जब भगवान महावीर वत्स देश में थे तो वहाँ के राजा शतानीक की बहन जयंती ने भगवान से पूछा कि जगे कौन और सोए कौन ? तब भगवान ने कहा, 'जागरिया धम्मीणं, अहम्मीणं च सुत्तया सेया।' धार्मिक जागा हुआ श्रेष्ठ है और अधार्मिक सोया हुआ है। धार्मिक जागेगा तो जग का कल्याण ही करेगा और अधार्मिक अकल्याण करेगा।

'ज्ञानं मदाय, धनं मदाय, शक्ति परेसां पर पीडनाय।
खलस्य साधु विपरीत वर्ते ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय।।'

अधार्मिक को अगर ज्ञान मिल जाए तो वह ज्ञान के अहंकार से भर जाएगा, धन आ जाए तो मद करेगा और शक्ति मिलने पर दूसरों को पीड़ा देगा। इसलिए भगवान कहते हैं कि धार्मिक का जागना श्रेयस्कर है और अधार्मिक का सोना श्रेयस्कर है, क्योंकि बुद्ध, राम और नानक जागेंगे तो कल्याण करेंगे और कंस, हिटलर, नादिरशाह, चंगेज खाँ जागेंगे तो विनाश करेंगे। इसलिए ऐसे लोग सोये रहें तो दुनिया का भला है।

कहते हैं तैमूरलंग सुबह दस बजे से पहले नहीं उठता था। उसने एक फकीर से पूछा कि मेरे दरबारी और सभी लोग कहते हैं कि इतना आलस्य ठीक नहीं है, क्या मुझे जल्दी उठना चाहिए, आपका क्या विचार है। फकीर ने तैमूर से कहा कि तू जीवन भर सोया रहे तो अच्छा है। तैमूर चौंक गया, उसे गुस्सा भी आया और सैनिक को आदेश दिया कि फकीर को बंदी बना लो। फकीर ने कहा, 'तैमूर, इंसान को बंदी बना लेने से सत्य बंदी नहीं हो जाता, किसी का गला घोंटने से सत्य दबता नहीं है, किसी को मार डालने से सत्य मरता भी नहीं है। सत्य अपनी रक्षा स्वयं करता है। तुम जैसे लोग जगेंगे तो संतों को बंदी ही बनाओगे, तुम्हारा सोना ही श्रेयस्कर है।' तैमूर जैसे लोग सोए ही रहें, इसी में सबका भला है। जितनी देर सोए, उपद्रव कम, अन्यथा शक्ति भी गलत हाथों में पड़ने पर खतरनाक सिद्ध होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज विज्ञान ने अपनी शक्ति सोए हुए लोगों के हाथों में दे दी है। कल्पना करो कि अगर किसी बददिमाग राष्ट्रप्रमुख ने परमाणु हथियारों के उपयोग का आदेश दे दिया, तब क्या इस विश्व का अस्तित्व बचेगा ? ऐसा नहीं है कि पहली दफा वैज्ञानिकों को अणुशक्ति का पता चला हो। महावीर भी अणुवादी थे और जैन-दर्शन दुनिया का सबसे प्राचीन अणुवादी दर्शन है। जैन पाँच हजार साल से कहते रहे हैं कि पदार्थ अणुओं का समूह है, पदार्थ अणुओं से बना है। अणु का सिद्धांत जैनियों का प्राचीनतम सिद्धांत है, ताकि मनुष्य आणविक शक्ति से सारी मानवता का विकास कर सके, सम्पूर्ण विश्व का विकास कर सके।

अणु के भी अनेक परमाणु हैं और परमाणु के भी अनेक खण्ड हो सकते हैं, इसकी खोज महावीर ने की। चित्त भी इसी तरह है। मनुष्य के पास अनेक चित्त हैं। वह एक चित्तवान नहीं है। अनेक चित्तों के द्वारा वह अलग-अलग कर्म संपादित करता है। अगर किसी के हाथ में प्रज्वलित मशाल दी जाए और उसके अंदर कल्याणकारी भावना हो तो वह सैकड़ों अन्य मशालें प्रज्वलित कर देगा और अगर विनाश की प्रवृत्ति जाग जाए तो आग लगाने के सिवाय कुछ नहीं करेगा। इसलिए शक्ति उसके हाथ में होनी चाहिए जो जागरूक हो, होश से भरा हुआ हो, सद्भाव से ओतप्रोत हो, अन्यथा शक्ति का तुम क्या करोगे ? धन भी सम्यक् हाथों में पड़े तो शुभ है, असम्यक् हाथों में पड़ जाए तो अशुभ। ज्ञान अगर विवेक दे तो शुभ है, प्रमाद दे तो अशुभ। जो भोग रहा है उसके पीछे अभी अज्ञान है, अंधकार है और जो जागकर जी रहा है उसके जीने में प्रकाश है, ज्योति है।

फिर से दोहरा लें कि इस जगत में ज्ञान ही सारभूत अर्थ है, जो पुरुष सोते हैं उनके अर्थ खो जाते हैं। अतः सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मों का क्षय करो। धार्मिक का जागना और अधार्मिक का सोना ही श्रेयस्कर है। ऐसा भगवान महावीर ने वत्स देश के राजा शतनीक की बहिन जयंती से कहा, मैं भी आप लोगों से यही कहना चाहता हूँ, जागते रहो और जागकर ही अपने सभी कर्मों को विनष्ट करो। बेहोशी को तोड़ो, सुनहरी सुबह तुम्हारे सामने है।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म : बंधन और मुक्ति

जब मनुष्य का जन्म होता है, तब वह नितांत अकेला आता है। माता-पिता, धन-संपत्ति, परिवार-समाज, कुछ भी उसके साथ नहीं आता। और जब वह इस संसार से कूच करता है, तब भी वह एकदम अकेला होता है, कुछ भी उसके साथ नहीं जाता है। आखिर वह क्या है जो जन्म और मृत्यु दोनों समय साथ होता है। यहाँ तक कि यह शरीर जो जन्म लेता है वह भी निष्प्राण यहीं पड़ा रह जाता है। फिर वह कौन-सा तत्त्व है जो आते और जाते समय विद्यमान रहता है ? एकमात्र मनुष्य के कर्म ही हैं जो जन्म के समय साथ आते हैं और मृत्यु के समय साथ जाते हैं। इसलिए हमारे जीवन में हमारा निकटवर्ती अगर कुछ है तो वह है हमारे कर्म। कर्म ही सदा कर्त्ता का अनुगमन करता है।

मनुष्य ही कर्म का बंधन करता है और वह ही उन कर्मों का भोक्ता है। दुनिया की अन्य सभी चीजें शायद पर के निमित्त से साथ आती होंगी, लेकिन कर्म एक ऐसा तत्त्व है जो मनुष्य के साथ आता है और जाता है। हाँ, मनुष्य ही अपने कर्मों का निर्माता है और उसके फलों का भोक्ता भी। कर्म-बंधन भी मनुष्य खुद ही करता है और उनसे मुक्ति भी वह ही पाता है। ये मनुष्य के कर्म ही हैं जो उसे सुख और दुःख देते हैं। तुम क्या साथ लेकर आए हो—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्नी, पति, मकान, दुकान, धन ? कुछ भी तो नहीं, सब कुछ यहीं अर्जित किया है और जो अर्जित करते हो वह तुम्हारा कैसे हो सकता है ? क्या तुम्हारे शव के साथ धन, दुकान, मकान, पद या परिवार जाने वाले हैं ? मैंने कभी भी मृतक के साथ परिवार को अपनी जान देते हुए नहीं देखा। न ही यह देखा कि धन की तिजोरी शवयात्रा के साथ चल रही हो। सबकी अपनी सीमाएँ हैं। सब यहीं रह जाते हैं। तुम्हारे मकान में दरार आ जाए तो तुम रोते हो, लेकिन तुम्हारी मृत्यु पर कोई मकान नहीं रोता। वैसे भी मृत्यु का शोक कुछ समय का होता है। पत्नी घर के दरवाजे तक, परिवार-समाज श्मशान घाट तक और दो गज कफन का टुकड़ा तब तक तुम्हारा साथ देता है जब तक चिता न जल जाए।

तुम्हारे पास चाहे जितनी जमीन हो या बिल्कुल भी न हो, कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। एक शव को केवल दो गज जमीन की ही जरूरत होती है। यह सारी माया मनुष्य रचित है और वह इसी में उलझा हुआ है। शंकर ने सत्य ही कहा, 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'। पर इस मिथ्यात्व का निर्माण मनुष्य ही करता है। लेकिन हम तो मानते हैं 'जगत सत्यं ब्रह्म मिथ्या'। इसका परिणाम यह होता है कि जीवन में शुभ-अशुभ कर्म का आस्रव निरन्तर जारी रहता है। इसमें वह अपने मूल उद्देश्य को भूल जाता है कि उसे मुक्त होना है और नए कर्मों का बंधन कर लेता है। आपने देखा होगा बच्चे का जन्म होता है तो मुट्ठी बँधी होती है और मृत्यु के समय वह खुली रहती है। यह इस बात का प्रतीक है कि आते समय कुछ अच्छे कर्म लेकर भी आया था, लेकिन जाते समय हाथ पसारे जाने के अलावा उसके जीवन में कुछ भी नहीं है।

सिकन्दर जब मृत्यु-शैय्या पर था। उसके जीवन की अंतिम घड़ी करीब थी। उसका अथाह धन भी उसके जीवन को बचाने में असमर्थ था, तब उसने अपने आस-पास खड़े राजवैद्य, मंत्री और दरबारियों से कहा, 'जब मैं मर जाऊँ और मेरा जनाजा निकाला जाए, तब मेरे दोनों हाथ ताबूत के बाहर रखना, ताकि जमाना देख सके कि जिस सिकन्दर ने जीवन भर धन इकट्ठा किया वह अंतिम समय में खाली हाथ जा रहा है।' यह विश्व-विजेता सिकंदर की अंतिम इच्छा थी। इसलिए जीवन का पहला सत्य यही है कि कर्मों का भोक्ता मनुष्य स्वयं है और इन कर्मों से मनुष्य स्वयं ही मुक्ति पाता है। कर्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंधन भी वही करता है, कर्मों का संवर भी वही करता है। दूसरा सत्य, मनुष्य सबसे बच सकता है, लेकिन स्वयं से और स्वयं के कर्मों से कभी नहीं बच सकता। शक्तिशाली से शक्तिशाली व्यक्ति भी अपने कर्मों से हार जाता है। जो दुनिया में किसी से पराजित न हो पाया, वह कर्मों से पराजित हो जाता है।

कर्म की शृंखला के चलते महावीर भी अपने पहले भव में सम्यक्त्व को उपलब्ध हो जाने के बाद भी उनकी आत्मा स्वर्ग में जाती, नरक में जाती है, तिर्यंच में जाती है और मनुष्य रूप में जन्म लेती है। कर्म इस दुनिया में किसी के रुके नहीं हैं। भले ही किसी राजज्योतिषी ने श्रीराम के राज्याभिषेक का मुहूर्त निकाल दिया हो, लेकिन कर्म की रेखाएँ इतनी विचित्र हैं कि राज्याभिषेक का मुहूर्त वनवास का मुहूर्त बन जाता है। राजा जनक राम के हाथों में अपनी पुत्री सौंपकर निश्चिंत होना चाहते थे, लेकिन सीता को कर्मों की प्रबलता के कारण मखमल के स्थान पर कुश की शैय्या ही मिली।

भगवान ऋषभ यूँ तो सम्राट थे, लेकिन पूर्वजन्म के कर्मों के कारण उन्हें संत-जीवन में एक वर्ष तक भूखे रहना पड़ा। हँसते-हँसते मनुष्य कर्म बँधन करता है, लेकिन कर्म-निर्जरा में अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। जब कर्मों का उदय जीवन में आता है, तब ही व्यक्ति को अतीत की स्मृतियाँ आती हैं। जैसे एक छोटा-सा अँगारा दावानल बन जाता है उसी तरह कर्म का निमित्त जीवन में महाविनाश का कारण बन जाता है। भगवान ऋषभदेव ने केवल बारह घड़ी, बमुश्किल पाँच-छः घंटे तक एक बैल के मुँह पर छींका बाँध दिया था कि वह चारा न खा सके। इसका परिणाम यह हुआ, बारह मास तक प्रभु को वांछित आहार न मिल सका और यह समय उन्होंने निराहार रहकर व्यतीत किया। किसी भी आदमी के हाथ में; कर्मों की रेख पर मेख मारना और कर्मों की रेखाओं को काटना, नहीं है। कर्म करते समय तुम स्वतंत्र होते हो, लेकिन जब भोगते हो तो परतंत्र हो जाते हो। तुम्हें पता भी नहीं होता कि जो हो रहा है वह क्यों हो रहा है।

कर्मों के समक्ष सभी शूरवीर और योद्धा, बल और धन पराजित हो जाते हैं। आज के परम-पावन सूत्र हैं कि कर्म कर्ता का अनुगमन करते हैं। जैसा कि गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति जिन भावों का स्मरण करते हुए अपनी देह का विसर्जन करता है उन्हीं के अनुसार उसके कर्मों का बंधन होता है। महावीर का भी आज यही परम संदेश है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र है–

जं जं समयं जीवो, आविसइ जेण जेण भावेण।
सो तंमि तंमि समए, सुहासुहं बंधए कम्मं।।

'जिस समय जीव जैसे भाव करता है उस समय वैसे ही शुभ-अशुभ कर्मों का बंधन करता है।'

हम मनुष्य के कृत्यों से उसके कर्म का आकलन नहीं कर सकते। अबोध और अज्ञानी जो कार्य करता है वही ज्ञानी संत करते हैं, पर पहले वाले को कर्म-बंध होगा, दूसरे को नहीं। जैसे, कहीं पर चींटियों का झुँड जा रहा हो तो एक अज्ञानी चींटियों को न मारकर भी दोष का भागी बन जाता है और ज्ञानी से चींटी मरकर भी अछूता रह जाता है। बिना विवेक के किए गए कार्य दोषपूर्ण होते हैं और होशपूर्वक जागरूक प्रज्ञा के साथ किए गए कार्य कर्म-निर्जरा करते हैं। भगवान कहते हैं कि उसका कर्मास्रव वैसे ही होता है जैसे चदरिया पर लगी मिट्टी। सूखी चादर पर लगी मिट्टी की उम्र उतनी है, जब तक उसे झटका न जाय। ठीक उसी तरह जब तक झटका न दे दें तब तक कर्मों का बंधन है। अज्ञानी पुरुष विचार-ही-विचार में निरंतर कर्मों का बंधन करता जाता है।

हम उस परम्परा के अनुयायी हैं, जहाँ पानी छानकर पिया जाता है, चींटी को जीवनदान दिया जाता है, लेकिन यह सब व्यावहारिक हिंसा से बचने के उपाय हैं। क्या कभी हमने जाना कि हम कितनी आन्तरिक हिंसा करते हैं। मानसिक हिंसा, विचार और भावों से की जाने वाली हिंसा का अपराध कहाँ जाएगा ? क्या हम इनसे मुक्त हो पाए। तुम बाह्य रूप से किसी को नहीं मारते-पीटते, लेकिन भावों में, विचारों में इससे बच पाए ? व्यक्ति के भाव ही व्यक्ति को कर्म से बाँधते हैं और यही भाव मुक्त भी करते हैं।

एक व्यक्ति जिसे कुष्ठ रोग है, उसे मारने के लिए उसका मित्र प्रतिद्वन्द्वी उसे विषपान करा देता है। लेकिन आश्चर्य कि यह विष उसके कुष्ठ रोग को समाप्त कर देता है। वह अपने प्रतिद्वन्द्वी मित्र के प्रति कृतज्ञ है। उसे धन्यवाद दे रहा है। लेकिन क्या वह सचमुच धन्यवाद का पात्र है, नहीं। भगवान कहते हैं वह पापी है। दूसरी ओर एक डॉक्टर है जो रोगी का जीवन बचाने के लिए ऑपरेशन करता है और कोई रक्तवाहिनी क्षतिग्रस्त हो जाती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है कि खून बहना बंद नहीं होता। रोगी के परिवार वाले मुकदमा चलाते हैं। डॉक्टर को दो वर्ष की जेल भी हो जाती है, लेकिन क्या वह पापी है ? नहीं। वह परिवार और कानून की दृष्टि में अपराधी हो सकता है, लेकिन पापी नहीं। एक के भाव मारने के थे, लेकिन बच गया, फिर भी हत्यारा हुआ। दूसरे के भाव बचाने के थे, लेकिन मर गया, यह पाप नहीं हुआ।

हिंसा और अहिंसा व्यक्ति के भावों पर अवलम्बित हैं। उसी की मानसिकता के आधार पर जीवन में बंधन होता है और मुक्ति भी। शरीर से किये जाने वाले दुष्कर्म अपराध की श्रेणी के होते हैं, लेकिन मन से किये गए कर्म पाप या पुण्य की श्रेणी में आ जाते हैं। वास्तविकता तो यह है कि हम बाह्य रूप से चाहे पाप से मुक्त हों, लेकिन आंतरिक रूप से कर्मों से मुक्त नहीं हो पाए हैं। हमारी मानसिकता और विचार उलझे हुए हैं। हमारी मिथ्या दृष्टि संसार में उलझी हुई है जिससे हम अनेकानेक शुभ और अशुभ भावों का संकल्प करते रहते हैं। हमें अपनी धारा को बदलना होगा। निम्न भावों से उच्च भावों की यात्रा करनी होगी। अपनी विचारधारा को जितना पवित्र बना सकें, बनाएँ।

तुम मंदिर जाते हो भगवान के दर्शन करने। वहाँ कोई परिचित मिला उसने तुमसे परिवार-व्यवसाय के संबंध में पूछा। दर्शन तो कहीं रह जाते हैं, तुम मंदिर में भी संसार में उलझ जाते हो। तुम मंदिर गए थे कर्म बंधन से मुक्ति पाने, लेकिन बाँध लाए और नए कर्म। हम संत-समागम करते हैं, ताकि कुछ दृष्टि मिल सके, निर्जरा की जा सके, पर क्या सभी ऐसा कर पाते हैं ?

बहु पुण्य केरा पुंज थी, शुभ देह मानव नो मळ्यो,
तो ए अरे भव चक्र नो आंटो नहिं एके टळ्यो।

अगर तुम्हारा विवेक तुम्हारे साथ में नहीं है, तो तुम्हें धर्मस्थल और धार्मिक सभाओं में जाने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि वहाँ भी तुम्हारी तर्क-कैंची चलती रहेगी, शुभ-अशुभ विचारों की शृंखला शुरू हो जाएगी। तब कर्म-मुक्ति तो होगी नहीं, कर्म-बंधन जरूर हो जाएगा। तुम दूसरों के कपड़े निचोड़ने में लगे हुए हो तो क्या तुम्हारे हाथ सूखे रह पाएंगे ? तुम दूसरों की ओर एक अंगुली उठाते हो तो तीन अंगुलियाँ तुम्हारी ओर मुड़ जाती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्या अर्थ है इसका ? तुम सामने वाले से तीन गुने अधिक दोषी या अवगुणी हो। इसके विपरीत तीन गुने अच्छे भी हो सकते हो, लेकिन इन छोटी-छोटी बातों में, छोटे से मजाक में छोटी-सी चर्चा में ऐसे निकाचित कर्मों का बंधन कर लेते हो कि जिनकी निर्जरा दीर्घ समय तक नहीं हो पाती। तुम सत् को असत् और असत् को सत् बनाने में लगे हुए हो जिससे कर्म-बंधन बढ़ता ही जाता है। तुम तीर्थ क्षेत्र में पापों से मुक्त होने के लिए जाते हो, पर कहीं वहाँ जाकर पाप तो नहीं बाँध आते ? कहा भी है—'अन्य क्षेत्रे कृतं पापं, तीर्थ क्षेत्रे विनश्यति'।

संसार के पाप धोने के लिए तीर्थ क्षेत्र में जाते हो लेकिन तीर्थ में जो पाप करोगे उन्हें धोने के लिए कहाँ जाओगे ? 'तीर्थ क्षेत्रे कृतं पापं, वज्र लेपो भविष्यति'।

तुम किसी-न-किसी उठा-पटक में लगे रहते हो। तुम्हारे कषाय-कर्म बंधन कराते हैं। तुम्हारे भाव-विभाव अंतर्मन में गाँठों और वैर का निर्माण करते हैं। परिणामस्वरूप भगवान पार्श्वनाथ के पूर्वभव मरुभूति और कमठ के वैर की धारा दस भवों तक समाप्त नहीं हुई और भगवान महावीर के विशाखानंदी और सिंह के रूप में चलने वाली वैर की धारा विभिन्न रूपों में कई भवों तक जारी रही।

तुम्हारा मन सदा चलायमान रहता है। उसके अंदर कुछ-न-कुछ पकता ही रहता है। तुम किसी को उठाने की और किसी को गिराने की सोचते रहते हो। पर याद रखो, अगर तुम किसी को संत-साधु या ब्रह्मचारी रखना चाहो और वह स्वयं न चाहे तो तुम्हारे हजार बंधन भी उसे रोक न पाएँगे और तुम किसी को गिराना चाहो तो तुम्हारे सैकड़ों अपघाती उपाय भी उसे विचलित नहीं कर पाएँगे। मनुष्य की मानसिकता सर्वोपरि है। जो शरीर से गिरता है वह तो कभी रुक भी सकता है, लेकिन जो मन से गिर गया उसे रोकने वाला कोई नहीं है। शरीर से गिरा हुआ तो सुधर भी सकता है, वह तो उठ भी सकता है, मुक्त भी हो सकता है। लेकिन जो मन से गिर गया उसे उठाने वाला कौन होगा ! जब तक मनुष्य की मानसिकता का विरेचन और निर्मलीकरण नहीं होगा, तब तक मुक्ति का मार्ग संभव नहीं। इसलिए जीवन बहुत सजगता, होश, विवेक और ध्यान के साथ जिओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर ने जब प्रव्रज्या ग्रहण की तो लगातार बारह वर्षों तक ध्यान करते रहे। ध्यान भी यही कि नए कर्मों का आस्रव न हो और पुराने कर्मों की कारा से मुक्ति हो जाए। कर्मों से मुक्त होने का एकमात्र मार्ग है नए कर्म-द्वार को बंद कर दो और जो पानी पहले आ चुका है उसे उलीचकर बाहर निकाल दो। कर्मों का आस्रव, संवर और निर्जरा ठीक वैसे ही है, जैसे हम नौका विहार कर रहे हों, नाव में छेद हो जाए और भीतर पानी आने लगे। यह है पानी का आस्रव। कर्म अब आने शुरू हुए, अचानक किसी सद्गुरु का संयोग हुआ और जीवन का बोध मिला। गुरु ने बताया कि देख नाव में पानी आ रहा है, तेरी नाव डूब जाएगी। तुमने एक लकड़ी का टुकड़ा उठाया और छेद पर ढक दिया, यह हुआ संवर। जो पानी आ गया है उसे उलीच-उलीचकर बाहर निकालना ही निर्जरा है। इसलिए जब तक मनुष्य जीवन में आने वाले आस्रव-द्वार को संवर में नहीं ढाल देता और बंधे हुए कर्मों से मुक्त होकर नए कर्म-बंधन को रोक नहीं देता, तब तक मनुष्य की जीवन-यात्रा जन्मों-जन्मों तक यों ही चलती रहेगी। कबीर की भाषा में—

मिनखा जनम दुर्लभ है, देह न बारम्बार।
तरुवर से फल झड़ि पड़्या, बहुरि न लागे डार।।

क्या तुमने इस जीवन का उपयोग किया ? तुम्हें तो कोहिनूर भी मिल जाएँ तो पहचान नहीं कर पाओगे; क्योंकि अभी तुम्हें वह दृष्टि ही नहीं मिली है। तुम तो उससे कौए ही उड़ाओगे। तुमने तो वासना और विषयों को भोगने के लिए जीवन को दाँव पर लगा दिया है। इसलिए भगवान कहते हैं, जिन भावों के साथ मनुष्य अपना जीवन जीता है उन्हीं भावों से वह जीवन में शुभ और अशुभ कर्मों का बंधन करता है। अपने जीवन को एक दिशा दो। हर समय शुभ, पवित्र और कल्याणकारी विचारों में रमे रहो। हम किसी के सहयोगी न बन सकें तो कोई बात नहीं, लेकिन किसी के जीवन के बाधक तो न बनें। हम दूसरों की लकीर मिटाने में या छोटी करने में लगे रहते हैं, न अपनी ओर से नई बनाते हैं और न बनी हुई को बड़ी करते हैं। स्वयं को बढ़ाना चाहते हो तो दूसरे को गिराओ मत, खुद आगे बढ़ जाओ, दूसरा खुद-ब-खुद पीछे छूट जाएगा। ध्यान रहे, कर्म तो मनुष्य का अनुगमन करते हैं। कहीं ऐसा न हो कि विपत्ति आने पर अपने अतीत के कर्मों के लिए प्रायश्चित्त करना पड़े कि मैंने ऐसा क्यों किया था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुम भगवान से माँगते हो और कहते हो कि हम एक पैसा देंगे, वे दस लाख देंगे। ऐसी कौन-सी बैंक है जो दस लाख गुना दे दे ? तुम उससे इतनी अपेक्षा रखते हो फिर तुम्हारे कर्म भी दस लाख गुना होकर प्रतिध्वनित क्यों न हों। होते हैं, अवश्य होते हैं। जब तुम कर्म करोगे तो उनका शुभ-अशुभ फल जरूर मिलेगा। जैसे भाव, वैसी परिणति।

दूसरा सूत्र है—

न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणु होई दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं।।

जाति, मित्र, पत्नी, परिवार, कुटुम्ब के लोग—ये सब मिलकर भी किसी के दुःख को नहीं बाँट सकते। मनुष्य अकेला ही दुःख का अनुभव करता है, क्योंकि कर्म कर्ता का अनुगमन करते हैं। तुम जीवन भर धन कमाते हो लेकिन उपभोग कौन करता है, पूरा परिवार। और जो पाप बटोरा उसका उपभोग कौन करेगा, केवल तुम। वाल्मीकि के साथ क्या हुआ था ? वाल्मीकि ऋषि बनने से पूर्व एक डाकू था। जंगल में परिवार के साथ रहता था। परिवार के पेट-पालन के लिए राहगीरों को लूटता और कभी-कभी हत्या भी कर देता। एक बार सात ऋषि उस जंगल से गुजरे। उसने उन्हें भी लूटना चाहा। पर उन ऋषियों के चेहरे के तेज से थोड़ा भयभीत भी हुआ। लेकिन डरने से परिवार तो नहीं चलता। हिम्मत करके कहा, 'जो कुछ भी तुम्हारे पास है मुझे दे दो।' ऋषियों ने कहा, 'हम तो संन्यासी हैं, धन-संपत्ति तो हमारे पास है नहीं। लेकिन तुम एक बात बताओ यह लूटमार किसके लिए करते हो ?' 'परिवार के पालन-पोषण के लिए' उसने कहा। ऋषि बोले, 'क्या तुम जानते हो कि यह जो तुम कर रहे हो, यह कितना गलत काम है, एक तरह से पाप ही है। क्या तुम्हारे परिवार वाले इस पाप में भागीदार बनेंगे ?' उसने कहा, 'जरूर बनेंगे, जब मैं कमाता हूँ तो सब खाते हैं तो मेरे पाप कार्य में भी वे बराबर के भागीदार होंगे।' ऋषियों ने कहा, 'तुम जाओ और जाकर पूछो तो सही कि वे तुम्हारे इस पाप-कर्म में भागीदार हैं या नहीं।'

वाल्मीकि गया और परिवार में पत्नी, माँ, बच्चों—सभी से पूछा—'जो भी कार्य मैं करता हूँ वह पाप है और क्या इसमें तुम सब बराबर के हिस्सेदार हो ?' पूरा परिवार एक तरफ हो गया, कोई भी उसके कार्य में भागीदार न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बना। परिजनों ने कहा, 'तुम जो करते हो वे तुम्हारे कर्म हैं, इस पाप में हम भागीदार नहीं हो सकते।' वाल्मीकि सन्न रह गया। कुल्हाड़ी वहीं फेंक आया और ऋषियों के चरणों में गिर पड़ा। ऋषियों ने उसे ज्ञान दिया 'पत्नी, पुत्र, परिवार, सगे-संबंधी भी तुम्हारे पाप कर्म को बाँटने के लिए तैयार नहीं हैं, फिर इतनी हिंसा किसके लिए !' वाल्मीकि के ज्ञान-चक्षु खुल गए। वह ऋषियों की प्रेरणा से धर्मस्थ और समाधिस्थ हो गया। और तब वाल्मीकि रामायण की रचना हुई।

भगवान कहते हैं कि जाति, मित्र, पुत्र, परिवार, पत्नी, माता-पिता कोई भी व्यक्ति के दुःखों को बाँट नहीं सकता है। वह राजकुमार अनाथी जिसकी आँख में भयंकर दर्द उठा, असहनीय पीड़ा शुरू हो गई, परिवार के लोग सभी तरह का उपचार करा चुके, पर कुछ फर्क नहीं पड़ा। राजवैद्य अपनी अक्षमता पर दुःखी हो चला। बेतहाशा घोर पीड़ा के बीच राजकुमार अपनी पत्नी से कहता है, 'बहुत पीड़ा हो रही है, कुछ उपाय करो।' पत्नी क्या कर सकती थी, वह रोने लग गई। माँ से भी कहा, पर उसकी आँखों में भी पानी था। सभी उसकी पीड़ा देखकर कुछ नहीं कर पा रहे थे। तब अनाथी संकल्प लेता है कि अगर मेरी आँख का दर्द चला गया, मेरी पीड़ा मिट गई, तो मैं कल सुबह संन्यास के मार्ग पर चल दूँगा।' संयोग से सुबह तक आँख बिल्कुल ठीक हो गई। तब राजकुमार सोचता है, 'ओह ! इस दुनिया में कोई किसी का नाथ नहीं है।' और वह मुनि-जीवन ग्रहण कर लेता है।

राजा श्रेणिक उसके पास आते हैं और कहते हैं, 'राजकुमार, तुम इस जंगल में क्या कर रहे हो ? तुम्हारा इतना सुन्दर व्यक्तित्व है, तुम यहाँ कहाँ साधना में लगे हो। यह समय और आयुष्य साधना का नहीं है। चलो, तुम राजमहलों में चलो। मैं तुम्हारे लिए श्रेष्ठ व्यवस्थाएँ करा देता हूँ। राजा ने उससे नाम पूछा, उसने बताया कि उसका नाम अनाथी मुनि है, संसार के सभी नाम छूट गये हैं। श्रेणिक ने कहा, 'अनाथी ! क्या तुम्हारा कोई नाथ नहीं है ?' उसने कहा, 'हाँ, मेरा कोई नाथ नहीं है, क्योंकि इस धरती पर दुःख-दर्द से बचाने वाला, कष्टों से बचाने वाला कोई नहीं है। इसलिए दुनिया में जीने वाला हर इंसान अनाथ है।'

कोई किसी का नाथ नहीं है। किसी पर कोई दुःख आने पर कोई साथ निभाने वाला नहीं है। व्यक्ति का मित्र कौन ? जो हर सुख-दुख में साथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निभाए। इसलिए भगवान ने कहा, 'अप्पा मित्तं अमित्तं च'—जब तुम सत्ता में होते हो तब सब आदर करते हैं, तुम्हारे इर्द-गिर्द मँडराते हैं। लेकिन जब सत्ताच्युत हो जाते हो, तो कोई नहीं पूछता, बल्कि अपमानित भी करने लगते हैं। जब तुम संपन्न हो, तो तुम्हारी समझदारी की प्रशंसा होती है, लेकिन विपन्न हो तो समझदारी मूर्खता में परिणित हो जाती है। उगते हुए सूर्य को सभी प्रणाम करते हैं, डूबते हुए को कोई नहीं।

एक फकीर चला जा रहा था। बहुत सुदर्शन व्यक्तित्व था उसका। एक वेश्या उस पर मोहित हो गई। वह वेश्या जिस पर नगर के प्रतिष्ठित और संपन्न व्यक्ति मरते थे। राजा भी, जिससे अनुराग रखता था, वह एक फकीर पर मोहित हो गई। उसने फकीर को आवाज लगाई, 'आओ मेरे यहाँ।' फकीर ने कहा, 'नहीं।' वेश्या ने कहा, 'मेरे यहाँ आने के लिए स्वयं नरेश भी बेताब है और तुम इंकार कर रहे हो।' फकीर ने कहा, 'मैं तब आऊँगा, जब तुम्हें वास्तव में मेरी जरूरत होगी।' और वह चला गया।

कालक्रम के अनुसार वेश्या जीवन-यापन करती रही। धीरे-धीरे वह रोगग्रस्त हो गई। उसे कुष्ठ रोग ने जकड़ लिया। वे राजकुमार और वे सेठ-सामंत जो उसके रूप पर भौंरे की तरह मँडराया करते थे, वे अब आँखों से देख भी नहीं रहे थे। वह घर में सड़ रही थी। पड़ोसियों ने राजा से दुर्गंध की शिकायत की। तब वेश्या को उठाकर नगर से बाहर कचरे की ढेरी पर फेंक दिया गया। वह कोढ़ के रोग से तड़प रही थी कि अमावस्या की अर्धरात्रि में प्रकाश की तरह वह फकीर पहुँचा और बोला, 'लो मैं आ गया हूँ।' उसने कहा, 'माफ करें, मेरे पास अब देने के लिए कुछ भी नहीं है। जब मैंने तुम्हें बुलाया था तब मेरे पास रूप और यौवन था, अब क्या दूँ ?' फकीर ने कहा, 'बस, तब तुम्हारा साथ निभाने वाले सब थे, अब मैं हूँ।' और फकीर ने अपने ऊपर से कंबल उतारकर उसे ओढ़ा दिया तथा सात दिन तक प्रेम और प्रार्थना के साथ उपचार किया। वेश्या स्वस्थ हो गई। अब फकीर पुनः अपनी राह चल दिया और पीछे-पीछे वेश्या भी चली। वे भगवान के द्वार पर जा पहुँचे, फकीर ने भगवान को प्रणाम किया, वेश्या ने भी प्रणाम किया। भगवान ने पूछा, 'यह कौन ?' फकीर ने कहा, 'यह नई साधिका है प्रभु, इसे दीक्षित करें।' और वहीं वेश्या साध्वी बन गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब यह आपके हाथ में है कि आप जीवन का कैसे उपयोग करते हैं, कर्म बाँधकर या कर्मों से मुक्त होकर ! देह यहीं रह जाने वाली है, परिवार, जमीन-जायदाद, सब यहीं छूट जाने वाले हैं। जो छूटना है, वह अवश्य छूटेगा। जो साथ चलना है, वह अवश्य साथ चलेगा। जो छूटना है, उसके साथ हम वैसे ही जिएँ, जैसे कमल जल के बीच रहता है। साथ में, मगर निर्लिप्त। हम भी ऐसे ही जिएँ संसार में। और, जो साथ चलना है, उस कर्म की निष्पापता पर, पुण्य-स्वरूप पर ध्यान दें। अशुभ से शुभ अच्छा है, पर शुद्ध होने के लिए तो अन्ततः शुभ से भी मुक्त होना होगा। अगर सर्वार्थ शुद्धि का उपक्रम हो सके, तो श्रेष्ठ, नहीं तो शुभ और पुण्य का तो दामन थाम ही लें, ताकि पापों की जंजीरों और काँटों का कष्ट न उठाना पड़े। पाप से पुण्य बेहतर है। धूप में खड़े रहने की बजाय छाया में खड़े रहना श्रेष्ठ है। मुक्ति वहाँ है, जहाँ सुख-दुःख की, पाप-पुण्य की धूप-छाँव नहीं है। परम शान्ति में, समता में, निर्लिप्तता में ही मुक्ति के बीज छिपे हैं।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानी होने की सार्थकता

आत्मा ज्ञानमय है और ज्ञान आत्ममय। 'जे आया से विन्नाणि, जे विन्नाणि से आया'। जो विज्ञान है वही आत्मा है और जो आत्मा है वही विज्ञान। इसलिए आत्मा सर्वतोभावेन अज्ञान-दशा में नहीं आती। गहरी से गहरी अज्ञानमूलक दशा में भी सूक्ष्मतम ज्ञानतंतु अवश्य रहता है। बच्चा नादान हो सकता है अज्ञानी नहीं। यह ज्ञान और अज्ञान ही कभी मनुष्य-जीवन का विकास करता है और कभी ह्रास। उसका ज्ञान वैसे ही ढका हुआ है जैसे बादल सूरज को ढक लेते हैं। लेकिन उसका अस्तित्व फिर भी विद्यमान रहता है।

जैसे यहाँ एक बल्ब जलाकर उसके चारों ओर पर्दे लगा दिए जाएँ तो भीतर का उजाला बाहर से कुछ दिखाई नहीं देगा। तभी एक परदा हटाया जाए तो भी तुम्हें कुछ दिखाई नहीं देगा। दूसरा पर्दा हटाने पर कुछ धुंधला-धुंधला नजर आ सकता है। तीसरा पर्दा हटाने पर कुछ जरूर महसूस होगा, हल्का-सा प्रकाश भी दिखाई देगा, पर स्पष्ट न हो सकेगा कि किसका प्रकाश है। चौथे पर्दे को हटाने के बाद आपको लगेगा कि कुछ जल तो रहा है, पर क्या है पता नहीं। अंतिम पर्दे को हटाने पर सबकुछ साफ हो गया। ज्ञान कहीं बाहर से पाने की आवश्यकता नहीं है, वह तो भीतर विद्यमान है, बस, परदे हटाने हैं। 'मेरे घट ज्ञान भानु भयो भोर'। हमारे भीतर का ज्ञान तब दब जाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है जब उस पर आवरण आ जाते हैं। आवरण—मोह, मूर्च्छा, काम, माया, लोभ और क्रोध के आवरण। तब ज्ञानावरण और दर्शनावरण हो जाता है।

मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य के मस्तिष्क में करोड़ों कोशिकाएँ होती हैं और उनमें से एक प्रतिशत कोशिकाओं का ही जीवन में उपयोग हो पाता है। अगर कोई व्यक्ति डॉक्टर बन गया तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी सभी कोशिकाओं का उपयोग हो गया। वह वकील भी बन सकता था, वकील की कोशिकाएँ दबी रह गईं। इंजीनियर बनने की क्षमता भी थी, वे कोशिकाएँ भी दबी रह गईं, वह चाहता तो ज्ञानी अध्यापक भी बन सकता था। इस तरह हमें जो मानसिक क्षमता मिली है उसका बमुश्किल एक प्रतिशत उपयोग हो पाता है। अज्ञानी और नादान व्यक्ति भी अपने जीवन में ब्रह्मज्ञान उपलब्ध कर सकता है बशर्ते अपने मानसिक कोष को जगाने की क्षमता हो।

विज्ञान में अनेक आविष्कार हुए, ऐसे आविष्कार कि हमारे पूर्वजों ने कल्पना भी न की होगी। क्या हमारे पूर्वज कभी टी.वी. और कम्प्यूटर के विषय में सोच सकते थे, लेकिन आज ये हमारे सामने हैं। इनका आविष्कार किसने किया ? विज्ञान के ये अद्‌भुत आविष्कार मनुष्य के मष्तिष्क की देन हैं। जैसे मस्तिष्क-विहीन शरीर निरर्थक होता है, वैसे ही आत्मज्ञान-विहीन मनुष्य अन्य कितना भी ज्ञान प्राप्त कर ले, बेकार ही रहता है।

मनुष्य के पास ज्ञान नहीं, जानकारियाँ हैं। अमेरिका में एक युवक ने आत्महत्या कर ली और पत्र लिखा कि 'संसार की तमाम जानकारियाँ मैंने इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त कर ली हैं अब यहाँ जानने को कुछ नहीं रहा इसलिए दूसरे लोक में जा रहा हूँ, नई जानकारियाँ पाने के लिए।' हमारा जीवन क्या जानकारियों का कोष है ? हम अपनी मानसिक क्षमता का उपयोग केवल अपनी रुचियों की जगह पर ही करते हैं।

ब्रह्मज्ञान किसी शंकर ने प्राप्त किया था तो यह न समझना कि इसकी क्षमता केवल उन्हीं के पास थी। महावीर ने केवल ज्ञान प्राप्त किया, बोधि-लाभ बुद्ध ने पाया तो यह मत समझना कि इसे तुम प्राप्त नहीं कर सकते। उन्होंने अपनी क्षमता का उपयोग किया, जबकि तुम्हारी क्षमता पर आवरण पड़ा हुआ है।

तुम्हारे नाभिकेन्द्र के दो इंच नीचे और दो इंच भीतर ऊर्जा का भंडार है। जिसे ब्रह्मज्ञानी कुण्डलिनी कहते हैं। वहाँ अटूट शक्ति भरी हुई है। यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य को उठाती भी है और गिराती भी है। मनुष्य के पास ज्ञान और काम दो चेतनाएँ होती हैं। कामोपभोगों में ऊर्जा का ह्रास होता है और जब ज्ञान से और ध्यान से गुजरते हैं तो ऊर्जा ऊर्ध्वगमन करती है। षड्चक्र-भेदन ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन है जो सहस्रार से अनन्त में विलीन हो जाती है। यह क्षमता हर मनुष्य में विद्यमान है। जैसे ही चेतना काम से ज्ञान में परिवर्तित हुई उसका ऊर्ध्वारोहण हो जाता है। चेतना के ज्ञान, ध्यान, योग, संन्यास में बदलते ही ऊर्जा ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। ऊर्जा कभी लुप्त नहीं होती। वह या तो चढ़ती है या गिरती है। ऊर्जा तब विनाश का रूप लेती है जब सिकन्दर, हिटलर, नादिरशाह और तैमूरलंग जन्म लेते हैं। यही विकृत ऊर्जा संस्कारित और विकसित हो जाए, रूपान्तरित हो जाए तो राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध और जीसस बन जाती है।

आत्मा ज्ञान से विमुक्त नहीं है, लेकिन ज्ञान का उपयोग कैसे किया जाए, यह महत्त्वपूर्ण है। मैंने तो यही पाया है कि कोरा ज्ञान मनुष्य को अहंकार देता है, तर्क-वितर्क देता है। इससे उसकी बुद्धि छोटी हो जाती है। ज्ञान जब संदेह और मिथ्यादृष्टि देता है तब वह ज्ञान गिर जाता है। यही ज्ञान ऊर्ध्वारोहित होता है तब व्यक्ति इस ज्ञान से समस्त सृष्टि के लिए, अस्तित्व के लिए कल्याणकारी जीवन जीने की कोशिश करता है। आज के सूत्र हमें यही बताएँगे कि व्यक्ति के लिए ज्ञान-प्राप्ति के लाभ क्या हैं, ज्ञानी होने का सार क्या है। ज्ञान से मनुष्य को नम्रता आनी चाहिए। जीवन में जो राग-द्वेष का विमोचन करता है वह ज्ञान है। हिंसा और परिग्रह से जो मुक्त करे वह ज्ञान है।

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसई किंचणं।
अहिंसासमयं चेव, एतावंते वियाणिया।

ज्ञानी होने का सार क्या है ? सार यही है कि व्यक्ति किसी की भी हिंसा न करे। यह जानना ही पर्याप्त है कि समत्त्व भाव ही अहिंसा है। हिंसा क्यों न करें ? क्योंकि ज्ञान मनुष्य को प्रेम की, करुणा की भाषा सिखाता है। महावीर कहते हैं, जिओ और जीने दो। मनुष्य जानता है कि वह क्या कर रहा है, लेकिन भेदबुद्धि के कारण वह जानबूझकर गलत भी करता है। और ज्ञानी होने पर वह विवेक से कार्य करता है। सब जीवों के प्रति मैत्री, प्रेम और अहिंसा, यही तो ज्ञान की उपलब्धि है। तुम जो पढ़ाई करते हो, स्कूल,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कॉलेज में डिग्रियाँ प्राप्त कर लेते हो, क्या उसे ज्ञान समझते हो ? या इस पढ़ाई के आधार पर कोई अच्छी नौकरी पा जाते हो या व्यवसाय करने लगते हो, वह ज्ञान है ? अपनी शिक्षा के आधार पर अच्छे प्रवक्ता या व्याख्याता बन जाते हो या समाज में अपनी प्रतिष्ठा के लिए अच्छे भाषण देना सीख जाते हो, वह ज्ञान है ? यह तो ज्ञान नहीं, शिक्षा है। ज्ञान वह है जो मनुष्य के हृदय में प्रेम का, आनन्द का स्रोत बहाता है। ज्ञान तो अंतस् में नवीन तीर्थ का उदय करता है। अहिंसा, करुणा और प्रेम की त्रिवेणी जहाँ बहने लगी, समझो वहीं ज्ञान का उदय हुआ।

ज्ञानी होने का अर्थ है कि व्यक्ति जीवन में किसी भी प्रकार की हिंसा न करे। तुम यह न समझना कि दूसरे को कष्ट देना या चोट पहुँचाना ही हिंसा है, स्वयं के प्रति भी तुम हिंसक हो सकते हो, स्वयं को भी कष्ट और चोट दे सकते हो। तुम मजे से आत्महिंसा किए चले जा रहे हो। लेकिन भगवान कहते हैं—

जीववहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ।
ता सव्वजीवहिंसा, परिचत्ता अत्तकामेहिं।

जीव का वध अपना वध है, जीव पर की गई दया स्वयं की दया है। अस्तित्व तो हमारे ही कर्मों की प्रतिध्वनि है। तुम जो करते हो वह द्विगुणित होकर तुम पर लौटता है। यह विश्व तो अन्तर्संबंधों से जुड़ा है। तुम जो देते हो, वही वापस आता है। सुख और दुःख का दाता ईश्वर नहीं है। ये सब तुम्हारे द्वारा ही दिये और लिए जाते हैं।

तुमने शेखचिल्ली की कहानी सुनी होगी कि वह एक पेड़ के नीचे बैठा था और एक मक्खी उसे परेशान कर रही थी। मक्खी बार-बार नाक पर आ जाती। उड़ाने के बाद भी उसका बैठना जारी था। शेखचिल्ली को गुस्सा आया, उसने छुरा निकाला और नाक पर चला दिया। मक्खी तो उड़ गई मगर नाक.....! इसीलिए कहा है 'जीवदया अप्पणो दया होइ।'

कहते हैं जीसस के पास निकोडियस नाम का व्यक्ति पहुँचा और कहा, 'मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ, आप उत्तर देंगे?' जीसस ने कहा, 'प्रश्न तो बताओ।' निकोडियस बोला, 'लेकिन मैं चाहता हूँ कि इस प्रश्न का उत्तर आप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक पंक्ति में दें। मेरा प्रश्न है धर्म का सार क्या है?' जीसस बोले, 'औरों से प्रेम, पर उतना ही जितना अपने आप से करते हो।

कबीर कहते हैं किसी को भी कष्ट मत दो। भले ही तुम दानी हो जाओ, पर जो हिंसा की है, वह उस दान से कम नहीं हो सकती।

'तिल भर मछली खाय के, कोटि गौ दे दान।
काशी करवट ले मरे, तो भी नरक निदान।।

कबीर कहते हैं कि तुम चाहे जो कर लो, लेकिन जो हिंसा की है उसके लिए मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। बबूल का पेड़ बोकर तुम आम नहीं खा सकते।

'जीव का वध अपना ही वध है'—महावीर की अहिंसा का शास्त्र दूसरे में भी स्वयं को देखने का शास्त्र है। वे कहते हैं कि तुम्हारे सिवाय यहाँ कोई नहीं है इसलिए जो तुम करोगे अपने ही साथ करोगे। तुम क्रोध में दूसरों को जो चोट देते हो, अंततः वह तुम्हीं को लगती है। जीवन का सबसे कठोर सत्य यही है कि जो कुछ हो रहा है उसका जिम्मेदार व्यक्ति स्वयं है। जो तुमने दिया था यह उसी की प्रतिध्वनि है। अगर तुमने इस पर ध्यान नहीं दिया तो फिर वही दोहराए चले जाओगे, जिसके कारण दुःखी हो। तुम्हारा दुःख का जाल फैलता ही जाएगा। अतः जीव पर दया करके तुमने कुछ अहसान नहीं किया, बल्कि स्वयं पर ही दया की है।

'ता सव्व जीव हिंसा परित्तता अत्त कामेहिं'—सभी आत्महितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीव-हिंसा का परित्याग किया। अगर तुम जीव-हिंसा नहीं करते, तो यह तो तुमने अपने पर दया की है। हिंसा का अर्थ है— दूसरों को दुःख देने की आकांक्षा। हिंसा का अर्थ है— दूसरों के दुःख में सुख लेने का भाव। परपीड़न का रस भी हिंसा है। आदमी दो हिस्सों में बँटा है—दूसरों को दुःख दो या अपने को दुःख दो। बस दुःख देना है। महावीर कहते हैं स्वस्थ आदमी सब प्रकार की हिंसा का परित्याग करता है। फूल में कोई रस ले समझ में आता है, लेकिन काँटों में रस लेना यह तो विकृति हो गई। महावीर कहते हैं कि दूसरे को दुःख देते हो तो वह अपने पर लौटता है, भले थोड़ी देर से ही सही—

माटी कहे कुम्हार सूं, तू क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा होयेगा, मैं रौंदूँगी तोय।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारे फासले और फर्क ऊपरी हैं, भीतर कहीं गहराई से हम जुड़े हैं। हमें कोई जोड़ने वाला तत्त्व न होता तो, दुःख कैसे लौटता ? तरंगें जाती हैं, लौट आती हैं। हम एक ही सागर के हिस्से हैं और उस सागर का नाम परमात्मा है। मिट्टी के कितने ही दीये हों, उनकी ज्योति एक है। ज्योति का स्वभाव एक है। दीयों के आकार में, रंग-रूप में फर्क हो सकता है, लेकिन सबके भीतर जो ज्योति जलती है, वह एक है। जो मेरे भीतर है वही तुम्हारे भीतर है। मुझमें और तुममें जो फर्क और फासले हैं, वे मिट्टी के दीयों के हैं। सब ऊपर की बात है, जैसे-जैसे भीतर उतरोगे, वैसे-वैसे भेद समाप्त हो जाएँगे। जब ठीक अंतर्जगत में पहुँच जाओगे तो पाओगे जो दीया यहाँ जल रहा है, जो ज्योति यहाँ है, वही वहाँ भी है।

हम सभी सद्धर्म जानते हैं, पर मुश्किल यह है कि हम उसे जीना नहीं चाहते। यह जानते हुए भी कि हिंसा करना पाप है, लोग हिंसा में लिप्त हैं। इसलिए भगवान कहते हैं कि ज्ञानी होने का सार यही है कि व्यक्ति अपने जीवन में हिंसा न करे। दूसरी बात भगवान कहते हैं—'जो समत्वभाव में जीता है वह हिंसा से मुक्त रहता है।' यह जगत अन्तर्संबंधों का जाल है। जैसा करोगे वैसा ही पाओगे। अगर तुमने अपने माता-पिता की सेवा की है, तो संभव है तुम्हारे बेटों से सेवा की अपेक्षा की जा सके।

एक बालक टूटी-फूटी प्लेटों को सँभालकर तिजोरी में रख रहा था। माँ ने पूछा, 'बेटा यह क्या कर रहा है ?' पुत्र ने कहा, 'माँ, तुम भी तो एक दिन बूढ़ी होओगी और तुम्हें खाना खिलाने को बर्तन चाहिए तो यही काम आ जाएँगे।' बेटे की माँ ने बूढ़ी दादी के साथ जो किया है वह बेटा कैसे भूल जाए !

भगवान कहते हैं, अगर तुम ज्ञानी हो तो स्वयं को हिंसा से पूर्णतया मुक्त करने की कोशिश करो। अगर तुमने बोधपूर्वक हिंसा का त्याग नहीं किया तो हिंसा जारी रहेगी। हिंसा करने के लिए भले ही मत सोचो, लेकिन हिंसा हो जाएगी। किसी ने गाली दी, तुम्हें नियम-संकल्प की याद भी न रहेगी और चेहरा तमतमा जाएगा। जब तमतमाहट आएगी तो पता चलेगा, अरे फिर से मैं बह गया। यह एक क्षण में हो जाता है। खाली बैठे थे, बगीचे में पेड़-पौधे हरियाली का आनन्द ले रहे थे कि एक गेंद आकर लग गई कि भीतर कुछ हिल गया। तुम्हें कुछ भी पता न था लेकिन परिणाम भीतर था, पुरानी आदत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भीतर थी, भीतर तूफान उठ गया, तुम गेंद लेकर बच्चे को पीटने दौड़ पड़े। बीज तो भीतर पड़े ही रहते हैं, जब भी वर्षा होगी, अंकुर निकल आएँगे। लेकिन जो होश और बोध से भरा हुआ है। वह अहिंसक हो जाएगा।

उसी का जीवन सार्थक है जो अपने जीवन का स्वामी और मालिक है, वही ज्ञानी होने का हक भी रखता है।

एक व्यक्ति घर में बैठा था, दोस्त आए हुए थे। पत्नी से कुछ झगड़ा हो गया। पत्नी को गुस्सा आ गया, वह झाड़ू लेकर आ गई। पति ने देखा, दोस्तों के सामने इज्जत का सवाल था। वह झट से पलंग के नीचे जा घुसा। पत्नी झाड़ू फटकारे और कहे कि 'बाहर निकल'। 'नहीं निकलूँगा', पति ने कहा। काफी देर तक यही चलता रहा कि वह कहे, बाहर निकल और पति बोले, नहीं निकलूँगा। आखिर अब यह निर्णय हो ही जाए कि घर का मालिक कौन है मैं कि तू ? आज पता चल ही जाना चाहिए। पत्नी ने कहा—पलंग के नीचे छिपा दबा बैठा है और स्वामी भी स्वयं को घोषित कर रहा है ?

ज्ञानी होने का सार यही है कि व्यक्ति जीवन में चलने वाली मूर्च्छा का त्याग करे। जीवन में उठने वाली राग-द्वेष की धाराओं का समापन करें। मानसिक, वैचारिक, शारीरिक या वाचिक हिंसा से व्यक्ति अपने आपको बचाए। भगवान कहते हैं, आत्महितैषी पुरुष सभी तरह की हिंसा का त्याग कर देते हैं। जीवदया करके स्वयं पर दया करते हो। यह मत समझना कि जीव-दया कर रहे हो तो अहिंसक हो गए। तुमने अपना हित साधा—आत्म-हितैषी ! सब चीजें वर्तुल घूमती हैं। अरे कहीं से दुर्गंध भी आ रही हो तो सुगंध का बीज बोओ, शायद वह दुर्गंध भी सुगंध में बदल जाए। पत्थर पर भी आती-जाती रस्सी के निशान पड़ जाते हैं, फिर यह तो मनुष्य का हृदय है। यहाँ तो परिवर्तन बहुत जल्दी संभव है।

आज के सूत्र हम जीवन में उतारने का प्रयत्न करें तो हमारा जीवन निर्मल, पवित्र और ज्ञानवान हो जाएगा। आप प्रयास करें, महावीर सदा आपके साथ हैं।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तप का ध्येय पहचानें

मनुष्य वैभव से भी पूजा जाता है और त्याग से भी। सत्ता और समृद्धि जहाँ जीते-जी सम्मान दिलाते हैं, वहीं त्याग मरणोपरांत भी सम्मान दिलाता आया है। दोनों में एक बड़ा अन्तर यह है कि सत्ताधारी और सम्पन्न व्यक्ति सम्मान तो प्राप्त करता है, लेकिन उसमें स्वार्थ की दुर्गंध होती है। वहीं एक तपस्वी-त्यागी को जो सम्मान मिलता है उसमें निःस्वार्थ श्रद्धा की गहरी सुगंध होती है। सम्मान तो दोनों ही पाते हैं, लेकिन उसकी गुणवत्ता में अन्तर होता है। व्यक्ति जब सत्तासीन है, किसी पद पर है, वह काफी सम्मान पाता है, लेकिन जब वह कुर्सी से उतर जाता है, सारा सम्मान बदल जाता है। कल तक जब पद पर थे, तो लोग उनके आगे-पीछे घूमते थे, चक्कर काटते नजर आ रहे थे, लेकिन आज पद से उतरते ही वे किसी और को ढूँढने लगते हैं।

याद करो जब तुम सत्ता में थे, वैभवशाली थे, लोग तुमसे राय लेने आते थे। समाज में मान देते थे। भले ही तुम्हारे पास बुद्धि-विवेक था या नहीं। कुर्सी से उतरते ही लोगों ने कतराना शुरू कर दिया। देखा यह सम्मान किसका और क्यों था ? यह तुम्हारा सम्मान नहीं था; और न ही तुम्हारे व्यक्तित्व का सम्मान था। यह सम्मान था सत्ता और सम्पत्ति का, उनके स्वार्थों की पूर्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिए था। अगर तुम ऊँची सीट पर बैठे हो या पैसे वाले हो, तो सब ओर तुम्हारी इज्जत होगी, पर ये गँवा बैठे तब ?

जब कोई नेता सीट से नीच उतर जाता है तो उसकी क्या स्थिति होती है यह तो उसकी आत्मा ही जानती है। तब तो पराये भी तुम्हारे अपने थे और आज अपने भी नजरें चुराने लगे हैं। एक सम्राट अपनी सत्ता के बल पर किसी का शीश तो झुका सकता है, पर किसी की श्रद्धा प्राप्त नहीं कर सकता। सिकन्दर की सत्ता के सामने शीश झुक सकता है, पर हृदय की श्रद्धा तो महावीर और बुद्ध जैसे त्यागी-तपस्वियों को ही मिल सकती है। शाश्वत पूजा त्याग की होती आई है। मनुष्य के जीवन में त्याग, संयम हो, तभी मूल्यपरक जीवन कहलाता है। महावीर के समय में अनेक राजा हुए, जिनके पास धन-वैभव और विशाल साम्राज्य था। वे सम्राट राजमहलों में सुख भोगते थे, पर महावीर के कानों में तब कीलें ठोकी गई लेकिन आज उन राजा-महाराजाओं का कोई नामलेवा तक नहीं रहा। महावीर तो रोशनी की एक मीनार हो गए हैं। बड़े-बड़े सम्राट भुला दिए गए, लेकिन महावीर और बुद्ध आज भी 'जीवित' हैं। जीसस, जिन्हें आज पूरा विश्व श्रद्धा और सम्मान दे रहा है, एक सामान्य से निर्धन परिवार से ही पैदा हुए, पर अपने संयम, त्याग और मानवता के चलते वे इतने पूजे गये कि विश्व का कोई सम्राट भी न पूजा गया।

व्यक्ति जीवन में कभी सत्ता से नहीं पूजा जाता। संयम और त्याग से पूजा जाता है। भारत की पहचान उन लोगों से ही है जिन्होंने जीवन-मूल्यों को समझा और अपनाया। हमारे पास महावीर की संयम-साधना है, कृष्ण का अनासक्त योग है, राम की मर्यादा और बुद्ध की महाकरुणा है। लेकिन यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि जिस देश ने पूरे विश्व को सत्य, अहिंसा, ईमान का संदेश दिया वहाँ के लोग आज बेईमानी की राह पर चल रहे हैं। कुछ दिन पूर्व एक अन्तरराष्ट्रीय सर्वेक्षण हुआ, नैतिक मूल्यों के सन्दर्भ में, तो आश्चर्यजनक परिणाम आए। उसमें बताया गया कि भ्रष्टाचारी देशों में भारत का भी स्थान था। जिस देश ने पूरे विश्व को सदाचार और सद्विचार की प्रेरणा दी, वह खुद आज भ्रष्ट-आचरण की राह पर अग्रसर है। हमारे पास ऊँचे सिद्धान्त हैं, पर क्या उस स्तर का हमारा जीवन भी है ? हम त्याग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में विश्वास करते हैं या भोग में ? अपरिग्रह की बात संग्रहवृत्ति में क्यों बदल गई है ? संदेश हमने सत्य के दिए और आचरण सत्य के विपरीत अपनाया। पूरे विश्व को हम निर्व्यसनी बनने का संदेश देते हैं, लेकिन खुद व्यसन में आगे हैं। संदेश औरों के लिए हैं, व्यसन हमारे लिए। हमने शील का संदेश तो पूरे विश्व को दिया लेकिन विकारों की जड़ें इतनी गहरी हैं कि बलात्कार और व्यभिचार की कोई-न-कोई घटना अवश्य हो जाती है।

भगवान के जिस सूत्र पर आज हम चर्चा कर रहे हैं वह संयम और तप से ही जुड़ा है। चाहे महावीर के महाव्रत हों या पतंजलि का अष्टांग योग अथवा बुद्ध का मध्यम मार्ग, ये सब संयम और तप से ही तो जुड़े हैं। भगवान कह रहे हैं—

जइ तं इच्छसि गंतुं, तीरं भवसायरस्य घोरस्स।
तो तव संजमं भंडं, सुविहिय ! गिण्हाहि तूरंतो।।

यदि तू घोर भवसागर के पार जाना चाहता है, तो हे सुविहित ! शीघ्र ही तप-संयम रूपी नौका को ग्रहण कर।

अष्टावक्र की तरह महावीर साधक से पहला प्रश्न यही पूछ रहे हैं कि क्या तू भवसागर से पार जाना चाहता है ? अगर तेरे मन में अभिलाषा है मुक्ति की, भवसागर को पार करने की, तो मेरी बातें तुम्हारे काम की हैं। महावीर सीधे मार्ग नहीं दे रहे हैं। पहले मनुष्य के अन्तर्मन को टटोल रहे हैं। अगर तुम दलदल में ही जाना चाहते हो, या भवसागर में ही डूबे रहना चाहते हो, तो महावीर के वचन तुम्हारे काम के नहीं हैं। महावीर कहते हैं घोर भवसागर ! सामान्य समुद्र को पार करना आदमी के लिए सम्भव है। पर यह भवसागर सात समन्दर से भी विराट और गहरा है, पग-पग पर डूबने का खतरा है। परमपिता परमेश्वर की महती कृपा और हमारा गहरा पुरुषार्थ ही पार लगा सकता है।

भगवान कहते हैं, सुविहित ! शीघ्र ही तप-संयम रूपी नौका को ग्रहण कर। क्षण भर भी इसमें प्रमाद मत करना।

आज हमारे पास सब कुछ है अपार धन-वैभव, सुख-साधन। पर तप-संयम से हम वंचित होते जा रहे हैं। हमारे पास महापुरुषों की लम्बी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कतार है। आगम-पिटक-पुराण हैं। लेकिन हमारी आचरणमूलक जीवन्तता नहीं रही। महावीर के पाँच महाव्रतों में से हम एक का भी ईमानदारी से आचरण नहीं कर पाते। अहिंसा के अनुयायी कहलाना चाहते हैं, लेकिन पाँवों में जूते चमड़े के हैं। हम अहिंसा के अधिकारी हुए कहाँ ? सत्य और अहिंसा का सम्बन्ध जीवन से समाप्त होता चला जा रहा है। सिद्धान्त हमने पूरी दुनिया को दे दिए। जीवन के नाम पर हमारी झोली तो खाली ही है। आज हमारी मानसिकता, जीवन-शैली, आचरण में गिरावट आ रही है। हमने विकास के नाम पर ऐसे-ऐसे काम किए हैं कि हमारे पूर्वज उन्हें स्वर्ग में बैठे देखकर शरमा जाएँ। हमने टी.वी., इण्टरनेट-सैटेलाइट का विकास तो कर लिया पर भीतर से खोखले होते चले गए।

कुछ दिन पूर्व एक युवक ने जिसकी उम्र मात्र बाईस वर्ष थी, एक पत्र लिखकर छोड़ा और आत्महत्या कर ली। पत्र में लिखा था—"मैंने दुनिया में जानने लायक सारी बातों का ज्ञान इण्टरनेट पर पा लिया है। अब पाने को कुछ भी शेष नहीं बचा। इसलिए मैं अपना जीवन समाप्त कर रहा हूँ।"

विकास तो हमने खूब किया है, परन्तु गिरे भी खूब हैं। पच्चीस वर्ष पहले जो ज्ञान बीस-बाईस की उम्र में होता था, वह आज दस-ग्यारह साल के बच्चे को है। आखिर जीवन-मूल्य, तप, अहिंसा, क्षमा, करुणा आदि हमारे हाथ से छिटक क्यों रहे हैं? पहले संगीत ऐसा था जो कानों की राह से धारा-प्रवाह हमारे अन्तर्मन में उतर जाता था। आज का संगीत केवल उत्तेजित करता है। प्राचीन संगीत पर आज भी हमारा सिर हिलने लगता है और मन झूम जाता है। आज का संगीत पाँव को हिलने पर मजबूर करता है और कुछ ही देरी में चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर समाप्त भी हो जाता है। कहाँ गईं वे शान्त स्वर-लहरियाँ ? आज त्याग-तपस्या का जीवन में जैसे कोई स्थान ही नहीं बचा। यम-नियम संयम की राह दिखाने वाले चित्रों की जगह उत्तेजना भरे, कामुक चित्र घरों की दीवारों पर शोभा पाने लगे हैं। महापुरुषों के चित्र तो कभी-कभार ही कहीं नजर आते हैं। आज हमने संयम के सारे मार्ग खो दिए हैं। आँख का संयम, कान का संयम, जिह्वा का संयम। भोजन अशुद्ध करने लगे हैं। जीने के लिए खाने की बजाय खाने के लिए जीने लगे हैं। नियमों में कहा गया है कि मुनि पवित्र आहार ले, लेकिन इस पर कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान नहीं देता। हम किस तरह का भोजन मुनि-सन्तों को खिला रहे हैं। खुद तो अपना भला नहीं कर पा रहे, दूसरों को भी सही चीज नहीं दे पा रहे हैं।

जब तक आहार शुद्ध न होगा, आचार शुद्ध कैसे होगा? जड़ ही सड़ने लगेगी तो पेड़ के पत्ते तो सूखेंगे ही। शुद्धि का विवेक ही चला गया है। भँवरा खुशबू की चाह में फूल की तरफ खिंचता चला जाता है, भले ही बाद में उसकी जान ही क्यों न चली जाए। आज आदमी का एक ही लक्ष्य रह गया है— खाओ-पीओ-मौज उड़ाओ। खाना ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। लोग भूख से कम, अंट-संट और हानिकारक भोजन करके अधिक बीमार पड़ रहे हैं।

गाँव के एक युवक का विवाह शहर की लड़की से हो गया। कुछ दिन बाद वह अपने मित्रों के साथ ससुराल गया। वहाँ जँवाई की खूब आव-भगत की गई। जब वे भोजन करने बैठे, तो उन्हें छोटी-छोटी गर्म पुड़ियाँ परोसी गईं। युवक तो गाँव का ही था, जँवाई हुआ तो क्या ? वह एक पुड़ी को एक कौर के रूप में बनाकर खाने लगा। वहाँ बैठे लोग हँसने लगे। पत्नी बेचारी शर्म के मारे दूसरे कमरे में भाग गई। उसने कोने में खड़े होकर अँगुली से इशारा किया कि एक पुड़ी के दो टुकड़े करके खाओ। उस पति ने अर्थ लगाया कि दो पुड़ी एक साथ खाओ। और....भोजन-बुद्धि है ना।

असल में आदमी खाने में ही जीने का आदी हो गया है। संयम, शील, विनय-विवेक आदि गुण न जाने कहाँ छोड़ आया है। संयम और तप का तो हम अर्थ ही भुला बैठे हैं। भगवान कहते हैं तप से आत्मा शुद्ध होती है। कषाय मिट जाते हैं। तप का क्या अर्थ है, इसे भी समझना होगा। मान लीजिये आपको मक्खन पिघलाना है तो उसे सीधे चूल्हे पर थोड़े ही रख दोगे। उसे किसी बर्तन में डालना ही पड़ेगा। यहाँ उद्देश्य बर्तन को तपाना नहीं है, बल्कि मक्खन को पिघलाना है। इसी तरह आत्मा को तपाने के लिए शरीर एक साधन है। तप से ही आत्मा का शुद्धिकरण होता है। तपस्या का अर्थ है जहाँ इच्छाएँ समाप्त हो जाएँ।

प्रायः होता यह है कि भूखे रहने की तपस्या तो काफी कर ली जाती है पर उसके पीछे छिपे उद्देश्य को भूला दिया जाता है। हमारे यहाँ चातुर्मास में तपस्या की होड़ लग जाती है और यह अच्छी बात है। पर क्या तपाराधना के साथ हम इन्द्रिय-संयम और कषाय-मुक्ति का लक्ष्य रख पाते हैं। हम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धचक्र पूजन में गुनगुनाते हैं, 'इच्छा-रोधन तप नमो।' तप को नमस्कार हो, पर कौन-सा तप ? जो हमारी इच्छाओं को नियन्त्रित करे। जितेन्द्रिय व्यक्ति भोजन करके भी उपवास कर लेता है और अजितेन्द्रिय व्यक्ति उपवास करके भी भोगों के प्रति आसक्त बना रहता है। भगवान कहते हैं—

उवसमणो अक्खाणं, उववासो वण्णिदो समासेण।
तम्हा भुंजंता वि य, जिदिंदिया होंति उववासा।।

इन्द्रियों के उपशमन को ही उपवास कहा गया है। जितेन्द्रिय लोग भोजन करते हुए भी उपवासी ही होते हैं।

रहस्य भरा सूत्र है यह और आज के धार्मिकों के लिए मील का पत्थर। भगवान कहते हैं भोजन न करके उपवास करना तो आम आदमी करता है। अगर तुम्हारे लिए भोजन का त्याग करना संभव न हो तो उपवास के और भी तरीके हैं, तुम अपनी इन्द्रियों का उपशमन कर लो। इन्द्रिय-विजेता ही सच्चा तपस्वी होता है। हाँ ! जितेन्द्रिय भोजन करके भी उपवासी हो जाता है।

देख रहा हूँ समाज में तपस्या का स्वरूप अब पूरी तरह बदल चुका है। जितनी तपाराधना लोग अब कर रहे हैं शायद पहले कभी न की हो, पर उपवास रह गये, उपवास की आत्मा हमसे छिटक गई है।

लोग तेले, अठाई, वर्षीतप न जाने क्या-क्या करते हैं, लेकिन इच्छा रहती है उनके पारणे पर सोने का सेट बनकर आ जाए। प्रभावना की जाए। वरघोड़ा निकले। सम्मान मिले। इच्छाएँ जब तक समाप्त नहीं होंगी, तपस्या का अर्थ ही कहाँ रह जाएगा? मासक्षमण में उत्सव मनाएँ, लेकिन दिखावा क्यों करें। तपस्या तो ऐसी होनी चाहिए कि उपवास करें तो किसी को पता ही न चल सके। तप कोई प्रदर्शन का माध्यम नहीं है। वह तो कषाय-मुक्ति और हृदय-शुद्धि का अभियान है। तपस्या को समाज में वैभव-प्रदर्शन से न जोड़ा जाए। फिर आत्मा की शुद्धि का क्या अर्थ ? आपके पास धन नहीं है और इसी कारण आप तप नहीं कर सकते तो इससे बड़ी सामाजिक आत्म-प्रवंचना और कुछ नहीं है।

एक घर में देवरानी-जेठानी ने अठाई की। इन दिनों में उनसे मिलने आने वालों का ताँता लगा रहा। उसकी सास और घर वाले तो आने वालों के लिए दिन भर चाय-नाश्ता बनाने में ही लगे रहे। भला, यह नाश्ता किस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बात का ! उपवास करने वालों से मिलने आएँ तो कम-से-कम उस समय तो मनोसंयम का परिचय आगन्तुक को ही देना चाहिए। यह भी उपवास करने वाले को नैतिक समर्थन देगा।

अगर तुम्हारे घर में किसी के अठाई या मासक्षमण है तो आने-जाने वालों के मिठाई-नाश्ते की व्यवस्था में मन लग जाता है, अगर वास्तव में तपस्या का आनन्द लेना चाहते हो, तो पचास मालाएँ घर लाकर रख देना। जो भी कुशलक्षेम पूछने घर आए, उसे कहना लो भैया, एक माला नवकार मंत्र की जप लो। हाँ, इससे तपस्या करने वालों को भी तप की अनुकूलता मिलेगी और आने वालों को भी। अगर केवल नाश्ते-पानी में ही उलझ गये तो तपस्वी के तप में व्यवधान ही आएगा।

तपस्या का मूल उद्देश्य अब समाप्त हो रहा है। अनाप-शनाप खर्चा, दिखावा-प्रदर्शन आदि पर हजारों रुपये खर्च कर दिए जाते हैं। और फिर कभी-कभी तो यह सब कुछ परिवार में क्लेश का कारण बन जाते हैं। किसी जगह तो ऐसा भी हुआ कि देवरानी-जेठानी दोनों ने एक साथ अठाई की। जेठानी का पीहर पक्ष समृद्ध था। वहाँ से सोने का हार आया और अन्य सामग्री भी आई। देवरानी के पिता सामान्य स्थिति के थे। उन्होंने अपनी हैसियत के अनुसार एक साड़ी भेजी। सास ने पचास जगह इसका जिक्र किया। बेचारी देवरानी का तो बुरा हाल हो गया। ऐसी स्थिति में सास-ससुर का फर्ज तो यह बनता है कि दोनों बहुओं के तप को मूल्य देते, न कि लेन-देन को।

हमारे यहाँ तो भोजन करते हुए भी तपाराधना होने के उल्लेख मिलते हैं। जो अपनी इच्छाओं का नियन्ता है, जिसके कषाय शान्त हैं और जो समभावपूर्वक जीवन जीता है, उससे बड़ा तपस्वी कौन हो सकता है। प्राचीन घटना है। पयूर्षण के दिन थे। कोई तेले कर रहा था, तो कोई अठाई। किसी ने मासक्षमण किया। एक नए-नए मुनि बने युवक से रहा नहीं गया। वह संवत्सरी के दिन आहार-चर्या के लिए निकल पड़ा। किसी तरह, कहीं से जुगाड़ कर दो रोटी ले आया और गुरु को दिखाने लगा। गुरु यह देख तमतमा उठे और उसे खरी-खोटी भी सुनाई। युवा मुनि शान्त और समता में रहे। आहार स्वीकार करते समय उनकी आँखों में आँसू भर आए। इतने आँसू निकले कि जो काम मासक्षमण नहीं कर पाया, वह आँसुओं ने कर दिया। वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित के आँसू थे। मुक्ति पाना इतना सरल है, यह तो पता ही न था। प्रायश्चित तो इतना पावन सरोवर है कि संवत्सरी के दिन रोटी खाकर भी साधक ने कैवल्य और आत्म-बोधि को उपलब्ध कर लिया। असली चीज है जीवन के प्रति सरलता, सजगता।

भगवान कहते हैं—तप से आत्मा परिशुद्ध होती है। शरीर को तपाना तो पड़ेगा ही। जीवन के यथार्थ को हर पल याद रखना होगा। अपनी निरंकुश इच्छाओं पर अंकुश लगाना होगा। ऐसा न हो कि ऊपर से तो उपवास कर रहे हो और भीतर कुछ पाने की चाह बनी हुई है। तपस्या का सम्बन्ध बाह्य उपभोगों से न जोड़ें। अन्तर्मन से जोड़ने की कोशिश करें। भले ही तीस नहीं, एक ही उपवास करें, लेकिन वह ऐसा होना चाहिए जो स्वयं में आत्मसात् करने का सूत्र दे दे। उपवास का अर्थ है स्वयं में वास करना। उपवास यानी भीतर निवास करना। जो साधक संयमित रहने का संकल्प ले लेता है, वही जगत से मुक्त होकर रहता है।

उपवास का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि भोजन नहीं किया जाए। उपवास का अर्थ है शरीर की प्रवृत्तियों से मुक्त होकर मनुष्य आत्मवास का संकल्प कर ले। आम तौर पर उपवास का मतलब यही है कि भोजन न लो। पर यह सीमित अर्थ है। उपवास को दो टुकड़ों में बाँटें—'उप' और 'वास' यानी अपने भीतर बैठना। उपवास का ही समानार्थक शब्द है उपनिषद, उपासना। उपनिषद, यानी भीतर उतरना। उपासना यानि अपने में अपनी बैठक लगाना। उपासना, उपवास, उपनिषद्—तीनों का लगभग समान अर्थ ही है।

मनुष्य बहुत सौभाग्यशाली है कि तप के रूप में उसे जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हुई है। तप तो कर्मों को धोने का एक साधन है। ध्यान रखें तपस्या केवल दैहिक नहीं होनी चाहिए। तपस्या में अन्तर्शुद्धि की कामना होनी चाहिए। तप करो तो मौनपूर्वक, कोई संवाद नहीं। लोग आएँ, संवाद करें, उन्हें करने दें। आप शान्त-तटस्थ हो जाएँ। उपवास करो तो पहले प्रहर में ध्यान करो, फिर स्वाध्याय। फिर विश्राम तथा सामायिक, प्रभुदर्शन आदि।

मुनिजनों के लिए भी ध्यान-स्वाध्याय प्राथमिक है, पर आजकल मुनिजन श्रावकों से बातचीत करने से ही निवृत्त नहीं होते, साधना कब करें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्मास में इधर-उधर के कामों में ही समय निकल जाता है। आज उसकी ओर से प्रभावना, आज अमुक की ओर से स्वामीवत्सल हो रहा है। मुनि इन्हीं उलझनों में उलझे हैं। हाँ, हम आगे अवश्य बढ़े हैं लेकिन मूल कहीं पीछे ही छूट गया है। हम धर्म के मूल तक जाएँ। आत्मलीन होकर तपस्या करें। आने-जाने वालों में लीन होने की बजाय खुद में हों लीन। जो चूक हो रही है, उन्हें सुधारो। देह नहीं, कषाय-निर्जरा पर ध्यान दो।

एक युवक किसी सद्गुरु के पास पहुँचा और कहने लगा कि मैं साधु बनना चाहता हूँ, आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। गुरु ने उससे कहा पहले थोड़ी तपस्या करो, अपने आपको तपाओ, फिर मेरे पास आना। युवक जंगल में चला गया। करीब छह माह बाद वह लौटा तो उसका शरीर क्लांत हो चुका था, उसकी दाढ़ी बढ़ चुकी थी। उसने आग्रह किया कि अब तो शिष्य बना लीजिए। गुरु ने कहा, अभी तुम्हें तपना होगा। युवक फिर जंगल की ओर चला गया।

वह एक वर्ष बाद फिर लौटा, मगर गुरु ने उसे शिष्य बनने के योग्य नहीं पाया। युवक कुछ नहीं बोला, मगर आँखें तरेरते हुए पुनः जंगल की ओर लौट गया। वह करीब दो वर्ष बाद लौटा। उसका शरीर पूरी तरह सूख चुका था। हड्डी-हड्डी नजर आने लगी थी। उसने गुरु से पूछा—"अब क्या कहते हो?" गुरु ने उसे देखा और मुस्कुराकर कहा, "अभी तपना शेष है।" उस व्यक्ति को गुस्सा आ गया। उसने अपने एक हाथ की अँगुली मरोड़कर तोड़ी और गुरु के हाथ में रख दी। वह बोला—अब भी आप मानते हैं कि कुछ तपाना शेष है।

गुरु कुछ देर खामोश रहे, फिर बोले—"भाई, मैंने तुमसे तपाने को कहा था, तुमने शरीर को तपा लिया मगर मन को नहीं तपा सके। मन तो अब भी वैसा है। भीतर गुस्से की चिनगारियाँ भरी पड़ी हैं। जब तुम मेरे पास पहली बार आए थे तब भी ये चिनगारियाँ जीवित थीं और आज भी मैं इन्हें जीवित देख रहा हूँ। मैंने शरीर को नहीं मन को तपाने की बात कही थी। मैंने मक्खन तपाने को कहा था, मगर तुम भगोना मात्र तपाते चले गए। जरा सोचो, क्या तुमने इतने वर्ष इसलिए शरीर को तपाया था कि अँगुली तोड़ कर मेरे हाथ में दे सको?" काश युवक इतनी आसानी से ही मन के उद्वेगों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तोड़ पाता ! तपस्या करना भी आसान बात नहीं है, लेकिन भीतर के आत्म-तत्त्व से साक्षात्कार उससे कहीं ज्यादा मुश्किल है। बाहर से भूखा रहना, जितना कठिन है, भीतर के कषायों को छोड़ना उससे भी अधिक दुष्कर है।

लोग कहते हैं सामान्य जीवन में जितना कषाय होता है, तपस्वी जीवन में उससे कहीं अधिक कषाय नजर आता है। इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि तपस्या मात्र शरीर को सुखाने के लिए नहीं, मन के कषायों को शान्त करने के लिए की जानी चाहिए। ऐसी तपस्या किस काम की कि जिससे शरीर तो सूखता चला जाए और भीतर का मन और अधिक उद्वेलित होता चला जाए। वो तपस्या कैसे सार्थक हो पाएगी, यह विचारणीय बिन्दु है।

लोग तीस-तीस दिन के उपवास कर लेते हैं मगर भीतर का क्रोध शान्त नहीं कर पाते। लोग मुझसे पूछते हैं, महाराज सा, मैंने मास-क्षमण किया लेकिन दो बार कच्चा पानी मुँह में चला गया, क्या प्रायश्चित करें ? भले आदमी, इसका प्रायश्चित तो दो उपवास करने से हो जाएगा, मगर एक दफा भी क्रोध कर लिया तो तुम्हारा पूरा मास-क्षमण निरर्थक गया समझो।

आज हमारा लक्ष्य केवल आठ, सोलह या तीस उपवास करने तक ही सीमित रह गया है। एक बात ध्यान रखिये, महवीर के धर्म में जिस तपस्या की इतनी महिमा है, वह शरीर सुखाने की नहीं है। वह शरीर का समुचित संचालन करने के लिए है। उपवास शरीर का शोषण नहीं है। हमने तो तपस्या का सारा सम्बन्ध शरीर से जोड़ लिया है। होता यह है कि हम लोग शरीर को तो सुखा लेते हैं, मगर जब क्रोध आता है तो उसे शान्त नहीं कर पाते, उलटे अपनी अंगुली तोड़ डालते हैं। लोग तप, पूजा आदि से अपने आराध्य की प्राप्ति के प्रयत्न करते हैं। हमें जैनों से तपस्या, वैष्णवों से भक्ति और मुसलमानों से धार्मिक निष्ठा सीखनी चाहिए। भगवान का आज का तीसरा सूत्र है—

तेसिं तु तवो ण सुद्धो, निक्खंता जे महाकुला।
जं नेवन्ने वियाणंति, न सिलोगं पवेज्जई।।

उन महाकुल वालों का तप भी शुद्ध नहीं है जो प्रवज्या धारण कर पूजा-सत्कार के लिए तप करते हैं। तप इस तरह करना चाहिए कि औरों को पता तक न चले और अपने तप की किसी के समक्ष प्रशंसा भी न हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्या हम समझ पाएँगे भगवान की तपस्या का रहस्य ?

लोग आठ-सोलह-तीस दिन तक उपवास करते हैं, लेकिन उनका ध्यान उस तरफ रहता है कि कितने लोग उनकी साता पूछने आए। बहु उपवास करेगी तो सास कहेगी-तेरे पीहर से कोई साता पूछने भी नहीं आया। देवरानी और जेठानी ने सोलह-सोलह दिन की तपस्या की। जेठानी के पीहर वाले साधन- सम्पन्न थे। उन्होंने पारणे के दिन चार सोने की चूड़ियाँ व एक चैन भेजी। देवरानी के पीहर वाले गरीब थे, इसलिए वहाँ से एक साधारण-सी साड़ी आई।

अब सास की नजरों में बड़ी बहू की तपस्या ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाएगी। देखता हूँ लोगों की भी आदत, वे चलाकर पूछते हैं तपस्या पर तुम्हारे पीहर से क्या आया? सास ने क्या दिया? महिलाएँ गीत गाती हैं 'रुपया सूं मूठ भराओ, थारी बहिना करी रे अठाई।' तपस्या का रुपयों से क्या सम्बन्ध! देखता हूँ, सम्पन्न लोग तपस्या को भी शादी-विवाह की तरह धन-प्रदर्शन का साधन बना लेते हैं।

तपस्या क्या सोने-चाँदी के आभूषण पाने के लिए की गई थी ? तपस्या तो जीवन के विकार और बढ़ती इच्छाओं को कम करने के लिए है। तपस्या का उपयोग संसाधनों को पाने के लिए या मात्र भूखे रहने के लिए मत करो। भोजन का उपवास न कर सको तो कोई बात नहीं, अपने भीतर के कषाय समाप्त करने का उपवास जरूर कर लेना। अपने क्रोध को समाप्त करने का उपवास कर लेना। तुम्हारा 'उपवास' हो जाएगा। अन्यथा केवल शरीर के साथ की गई जबरदस्ती से तपस्या परिणाम न दे पाएगी। और उपवास करें तो इतने गोपनीय ढंग से करें कि आपके घरवालों के अलावा किसी को पता नहीं चल सके। तपस्या कोई प्रचार की चीज नहीं है। यह तो तन-मन को निर्मल करने का साधन है।

तपस्या तो आत्म-महोत्सव है, जीवन को सँवारने की शैली है। तपस्या को तन से ऊपर उठाएँ, मन में लाएँ। आप भले ही तीस नहीं, सोलह नहीं, यहाँ तक कि आठ भी नहीं, केवल एक उपवास कर लें, बस अपने मन को शान्त-निर्मल करने का विनम्र प्रयास करें। होता यह है कि आदमी आठ-दस दिन तक तो किसी तरह उपवास कर लेते हैं, लेकिन बाद में उनसे न तो ढंग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से माला जपी जाती है और न ही मन्दिर जा पाते हैं। वह आधे घण्टे तक भी माला नहीं जप पाता। लोगों का ताँता लग जाता है, जो उसकी साता पूछने आते हैं। उसका सारा ध्यान तो इस बात की तरफ लग जाता है कि कैसे ये उपवास पूरे हों। या कहाँ से क्या आया? या कौन-कौन मिलने आए ? इसी में वह भटक कर रह जाता है। इसी ऊहापोह में ही मास-क्षमण पूरा हो जाता है।

अतीत में कभी शिष्यों ने महावीर से पूछा था कि तपस्या का फल क्या होता है? महावीर ने कहा—"तपस्या से व्यक्ति भीतर से निर्मल और पवित्र होता है। मन की निरंकुश लालसाएँ व कामनाएँ समाप्त होती हैं।"

भारत कभी सिकन्दर और हिटलर जैसे विश्व-विजय का स्वप्न देखने वाला पैदा नहीं कर सका। आइंसटीन जैसे वैज्ञानिक पैदा नहीं कर सका, मगर यह मत भूलिए कि भारत ने राम-कृष्ण को पैदा किया, महावीर-बुद्ध को पैदा किया, मीरां और कबीर को पैदा किया। भारत की धरती महिमावंत है। यहाँ ऐसे लोग हुए, जिन्होंने जीवन को धन्य किया। यहाँ गाँधी-विनोबा हुए। सन्तों की तो यहाँ एक परम्परा रही है। यही कारण है कि एक सम्राट के सामने यहाँ सिर भले ही झुक जाए, दिल तो सन्त के आगे ही झुकता है। भारतीय संस्कृति की मूल आत्मा सादा जीवन और उच्च विचार को अपनाती है। जब तक यहाँ सदाचार की गंगा-यमुना बहती रहेगी, यह देश विश्व में गौरव पाता रहेगा। तुम अपने जीवन को इतना सादा, पवित्र बना लो कि तुम चलो तो तपस्या, बैठो तो तपस्या, सोओ तो तपस्या बन जए। आपका हर कदम तपस्या के साक्षात्कार की अनुभूति दिलाने वाला होना चाहिए। उपवास से कषाय समाप्त नहीं होते तो उस उपवास का क्या फायद ?

लोग मास-क्षमण करते हैं। मासक्षमण का अर्थ कितने लोगों को पता है ? मास का अर्थ है एक महीना और क्षमण यानी क्षमा में जीना। एक मास तक क्षमा में जीना मासक्षमण है। जो क्षमा में जीने का संकल्प ले चुका हो, वही मास क्षमण का तपस्वी। एक बार की बात है, मैं एक नगर में था। पर्युषण के दिन थे। एक व्यक्ति ने मास-क्षमण किया। समापन अवसर पर उसका वरघोड़ा निकाला गया। जब वह 'पचक्खाण' के लिए हमारे पास पहुँचा तो किसी ने मेरे कान में कहा कि महाराज, यह आदमी, जिसने मास-क्षमण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया है, अपने छोटे भाई से नहीं बोलता। दोनों के बीच कई साल से जमीन-जायदाद का विवाद न्यायालय में चल रहा है। आप आज इन दोनों को मिला दें, तो बहुत अच्छा होगा।

मैंने पहले छोटे भाई को एक तरफ बुलाकर समझाया तो वह मान गया। उसने कहा कि मैं मामला वापस ले लूँगा। वह हॉल में बैठे बड़े भाई के पास पहुँचा और उसके चरणों में गिर पड़ा। मगर खेद ! बड़े भाई ने अपनी गर्दन पीछे कर ली।

बात खत्म हो गई। लोग मासक्षमण के तपस्वी की जय-जयकार करते लौट गये, पर मैं जानता था कि बड़े भाई के मासक्षमण ने परिणाम न पाया। एक मास तक उपवास किया मगर उसके भीतर क्षमा के भाव पैदा नहीं हुए तो उसका उपवास निरर्थक गया। ऐसा मासक्षमण केवल एक समारोह बन कर रह जाता है। जीवन में परिवर्तन नहीं ला पाता।

उपवास भीतर के कषाय समाप्त करने का माध्यम है, आत्मा में वास करना है। आप मासक्षमण नहीं कर सकें, कोई बात नहीं, आप ये प्रतिज्ञा करें कि चार दिन तक क्रोध नहीं करेंगे। आप अपनी इस प्रतिज्ञा पर कायम रहे तो समझिये—उपवास हो गया। जहाँ कषाय का उपवास शुरू हो जाता है वहाँ तपस्या अपने आप सध जाती है। हम चर्चा तो महावीर की क्षमा और समता की करते हैं, मगर अपने को नहीं तपा पाते। छोटी-सी बात पर तो हमें गुस्सा आ जाता है। महावीर तो कानों में कीलें ठुकने पर भी शान्त और तटस्थ रह सकते हैं पर हम तो कान में गाली भी सहन नहीं कर सकते, कानों में कील ठुकने की बात तो अलग है।

बहुत कम तपस्वी ऐसे देखे हैं जो क्रोध नहीं करते। इसलिए तपस्या जरूर करें, मगर इसके मूल अर्थ को साथ लेकर। हमारे कषाय कितने शांत हो रहे हैं और इन्द्रिय-निग्रह कितना हो रहा है, इस बात का ध्यान रखें। तपस्या पर किए जाने वाले लेन-देन से परहेज़ रखें। तपस्या को भीतर से जोड़ें। तपस्या वहीं तक करें, जहाँ तक शरीर माने। यदि आठ दिन बाद आपको लगे कि अब और तपस्या नहीं होगी, भूखा नहीं रहा जा सकेगा, तो वहीं रुक जाएँ। ऐसा नहीं किया तो तपस्या शरीर के शोषण का कारण बन जाएगी। शास्त्रों में कहा गया है—'अति सर्वत्र वर्जयेत'। तपस्या का मूल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यही होना चाहिए कि न तो ज्यादा भूखे रहें और न अधिक खाएँ। शरीर को उतना ही तपाएँ, जितना आवश्यक हो। और उतना ही पोषण दें, जितना आवश्यक हो।

भगवान बुद्ध के जीवन की बहुत ही महत्त्वपूर्ण कथा है। बुद्ध ने ज्ञान-प्राप्ति के लिए खूब तपस्या की। अपने शरीर को सुखा लिया मगर उन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। एक बार वे एक वृक्ष के नीचे आँखे बन्द किये बैठे थे। वहाँ से कुछ पनिहारिनें एक गीत गुनगुनाती गुजरीं। उसका भाव था।

इतने अधिक कसो मत निर्मम, वीणा के हैं कोमल तार।
टूट पड़ेंगे सब के सब ही, कभी न निकलेगी झंकार।।
इतने अधिक करो मत ढीले, वीणा के रसवंती तार।
कोई राग नहीं बन पाये, निष्फल हो स्वर का संसार।।

वीणा के तार न तो इतने अधिक कसो और न ही उन्हें ढीला छोड़ो। तारों को ज्यादा कसा तो वे टूट जाएँगे और ढीला रखा तो संगीत की स्वर-लहरियाँ नहीं निकलेंगी। बुद्ध को जैसे बोध हो गया। उसी दौरान सुजाता नामक एक महिला ने उनके आगे लाकर खीर से भरा प्याला रखा। बुद्ध ने समझ लिया कि शरीर रहेगा तो तपस्या अपने आप हो जाएगी और उन्होंने वह खीर ग्रहण कर ली। कहते हैं बुद्ध को उस दिन ज्ञान हो गया और जिस वृक्ष के नीचे वे बैठे थे उसका नाम बोधि-वृक्ष पड़ गया। वीणा को वहीं साधो, जहाँ उसमें से झंकार निकल सके। तपस्या को आत्मा से जोड़ो, शरीर से नहीं। जहाँ आत्मा में वास हुआ वहीं उपवास हुआ और वहीं तपस्या हुई।

तपस्या में आदमी अन्तर-शुद्धि तो नहीं कर पाता, वरघोड़ा जरूर निकालना चाहता है। होगा यह कि वह पूरा शरीर सोने से सजा लेगा मगर भीतर की गन्दगी को साफ करने की तरफ उसका ध्यान नहीं जाएगा। सबसे पहले भीतर को सजाने का प्रयास करें। उपवास भीतर के कषायों को समाप्त करने में सक्षम है। आप उपवास नहीं कर सकते तो इतना तो जरूर करें कि आज मैं लोभ नहीं करूँगा, डाँट-डपट नहीं करूँगा। अहंकार और क्रोध में नहीं जीऊँगा। इतना ही कर लिया तो काफी है।

आप अपनी तपस्या को नया मोड़ दें। आप तय करें कि आज मैं ऊनोदरी-तप करूँगा यानी भूख से दो ग्रास कम खाऊँगा या थाली में जैसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भोजन आएगा, समतापूर्वक स्वीकार कर लूँगा। सच कहता हूँ, आपकी तपस्या सध गई।

भोजन बनाते समय भी जागरूकता जरूरी है। ऐसा न हो कि भोजन बनाने को भट्टी जलाओ और उसमें कई जीव-जन्तु मर जाएँ। मैंने देखा है कि लोग बड़ी तपस्या के पारणे के दिन जीमणवारी के लिए आधी रात से ही भोजन बनाने की भट्टियाँ जलाने लगते हैं। लेकिन वे यह नहीं देखते कि इन भट्टियों के जलने से कितने जीवों की हिंसा मिठाइयों में हो रही है। तेज लाइटों में मच्छर आते हैं और वे गिर कर मर जाते हैं।

तपस्या पर भोजन करो तो यह भी ध्यान रखो कि उसके कारण कहीं हिंसा तो नहीं हो रही है। मास-क्षमण करो तो आरम्भ-समारम्भ से बचने की कोशिश करो। तप तो महावीर ने भी खूब किए थे, मगर वे सम्पूर्णतया हृदय-शुद्धि और आत्म-मुक्ति के लिए थे। तपस्या करो तो अपने भीतर उतरो। संकल्प करो कि शान्ति और समता रखोगे, तभी जीवंत तपस्या होगी। ऐसा एक भी उपवास कर लिया तो जीवन के उद्धार के लिए काफी होगा। प्रभु कहते हैं क्षमा में जीना ही मास-क्षमण है। काश ! हम ऐसा उपवास कर पाएँ, ताकि हमारा जीवन धन्य हो सके और उपवास केवल तन तक ही नहीं, मन पर भी अपना प्रभाव छोड़ जाए। तन की शुद्धि और मन की शांति—हर तप के पीछे यह विवेक रहे।

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समझें, गृहस्थ के दायित्व

धर्म और अध्यात्म की ओर प्रवृत्त होने के लिए दो मुख्य मार्ग हैं। एक मार्ग वैसे तो सरल है, लेकिन उसे सजगता से जीना मुश्किल होता है और दूसरा मार्ग वह है जिसे ईमानदारी से स्वीकार कर लिया जाए तो वह बहुत सहज हो सकता है। मनुष्य का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है फिर चाहे वह ध्यान-साधना, पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन या भक्ति से अर्जित हो। मुक्ति मनुष्य की आध्यात्मिक कामना है और इसे प्राप्त करने के लिए गृहस्थ और वैराग्य दो मार्ग हैं।

संन्यस्त हो जाना परम सौभाग्य हो सकता है, लेकिन संसार से भागा हुआ व्यक्ति संन्यासी नहीं हो सकता। अपने दायित्वों का निर्वहन करते हुए जो गृहस्थ परम सत्य को प्राप्त कर लेता है वह भी किसी संन्यासी से कम नहीं है। कुछ ज्ञानीजनों ने कहा कि सिद्धि पानी है तो संत बन जाओ। यह ठीक है कि सिद्धि प्राप्त करने में संतत्व सहायक है, लेकिन संत बनना अनिवार्यता नहीं है। गृहस्थ रहकर भी व्यक्ति कुछ ऐसे धर्मों का (गुणों का) अनुसरण कर सकता है जिनके द्वारा मुक्ति प्राप्त हो सके और वहीं यदि मुनि-जीवन में वह विपरीत धर्मों का सेवन (आचरण) कर लेता है, तो विकास की यात्रा पतन की ओर चली जाती है। मुनित्व की धारा में चल रहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति अपने भीतर वही गंदगी, वही कचरा, वही मटमैलापन, वही तमस, वही दुर्गंध लेकर चल रहा है तो उसका मुनिपन निरर्थक है। बाहर से उज्ज्वल दिखाई देने वाला मुनित्व अंदर से कलुष भरा हो सकता है। वह मुनि-जीवन की दैनिक मर्यादाओं का पालन कर सकता है, बाह्य रूप से उसके हर काम में तीव्र सजगता हो सकती है, वह समस्त धार्मिक क्रियाएँ भी सम्पन्न करा सकता है, लेकिन आंतरिक पक्ष उज्ज्वल न हो पाये तो उसका मुनि-जीवन शर्मनाक है।

वेदों की चार आश्रम की व्यवस्था बहुत सार्थक है। वेद कहते हैं कि मनुष्य अपने जीवन का प्रथम भाग ब्रह्मचर्य में, द्वितीय भाग गृहस्थ में, तृतीय भाग वानप्रस्थ में और चतुर्थ भाग संन्यास में बिताये। जब तक व्यक्ति पहली कक्षा न पढ़े यह बहुत मुश्किल है कि वह आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर सके। इसी तरह ध्यान-साधना भी क्रमिक अभ्यास है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है अत्यंत पवित्रता के साथ जीवन जीना। इसका अर्थ यह नहीं कि गृहस्थाश्रम में कुछ कलुषता हो, इसका मतलब है बालपन में व्यक्ति अधिक निर्मल, अधिक कोमल और अधिक शुचिता लिए हुए होता है। यूँ तो अपवाद भी मिल जाएँगे फिर भी कलुषता कम ही होती है। वैसे भी चारित्रिक रूप में शरीर से गिरना कम संभव हो पाता है, लेकिन मन तो जब-तब, यदा-कदा गिरता ही रहता है। मन में उठने वाले विचार उसे उठाते-गिराते रहते हैं। इसलिए जीवन की प्रथम अवस्था ब्रह्मचर्य कही गई, जहाँ संस्कार, शिक्षा, आचार-व्यवहार सम्पन्न होते हैं। दूसरी, गृहस्थ-अवस्था में व्यक्ति की दृष्टि तो घर में स्थित है, लेकिन अन्तर्दृष्टि में आगे वाली अवस्था स्पष्ट दिखाई देती रहती है। हमारी आदत है अतीत में देखने की। हम उसे ही मधुर और सुखी समझते हैं, लेकिन ज्ञानी वही है जो आज में रहकर भविष्य का दर्शन कर पाता है। जो जानता है कि गृहस्थ-धर्म के बाद मुझे वानप्रस्थ में प्रवेश करना है, वह संसार के मायाजाल से धीरे-धीरे ऊपर उठ जाता है और वानप्रस्थ धर्म में सांसारिक बंधनों से स्वयं को निर्लिप्त कर लेता है।

आज हम गृहस्थ के दायित्वों की चर्चा करेंगे कि व्यक्ति घर में रहते हुए, संसार में रहते हुए कैसे सिद्धत्व को प्राप्त कर सकता है। आपने श्रीमद् राजचन्द्र का नाम सुना है न ? वे गृहस्थ थे। संसार का त्याग भी न किया था, लेकिन मात्र बयालीस वर्ष की उम्र में उन्होंने जिस परम सत्य को पाया,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधना के जिस चरम स्तर को छुआ था वह साधु-संन्यासियों तक को मिलना दुष्कर होता है। गृहस्थ या संन्यासी होना गौण है वास्तविकता यह है कि हमारे अंतर्मन में क्या है—गृहस्थी में संन्यास या संन्यास में गृहस्थी ? व्यक्ति के अंदर इतना गहन अज्ञान है कि वह सत् को असत् और असत् को सत् मानकर ही चलता रहता है। उसको मतिभ्रम हो जाता है।

एक बार किसी ग्रामीण व्यक्ति को आईना मिला। उसने देखा तो उसमें जो प्रतिबिम्ब नजर आया उसे अपना पिता जानकर प्रणाम किया। वह आइना उसने तिजोरी में रख दिया और सुबह-शाम निकालकर उसे देख लेता और प्रसन्न हो जाता। उसकी पत्नी नित्य ही यह क्रम देखती। उसने सोचा कि यह रोज-रोज सुबह-शाम तिजोरी खोलता है। आखिर करता क्या है ? यह देखना चाहिए। एक दिन जब पति घर में नहीं था, तो उसने तिजोरी खोली, आईने का टुकड़ा उठाया और उसमें झाँका। स्वयं के प्रतिबिम्ब को किसी अन्य का प्रतिबिम्ब समझकर वह क्रोधित हो उठी कि यह चुड़ैल, इसको ही पति सुबह-शाम देखता है और खुश होता है। क्रोध में उस आईने को जमीन पर जोर से फेंक दिया। आईना टुकड़े-टुकड़े हो गया। शाम को जब पति घर आया तो कहा आज मैंने उस चुड़ैल को खत्म कर दिया। पति ने कहा कि कौन-सी चुड़ैल ? पत्नी ने बताया कि जिसे तुमने तिजोरी में छिपा रखा था। 'वे तो मेरे पिता थे', पति ने कहा। किसी के लिए पिता, किसी के लिए सौतन, मगर सच्चाई कुछ और है।

आज के सूत्र कुछ ऐसे ही हैं। ये बहुत ही कीमती सूत्र हैं जो कभी-कभी ही प्रगट होते हैं। शायद कोई महापुरुष ही यह कहने की हिम्मत कर सके कि कुछ गृहस्थ भी ऐसे होते हैं जो संतों से भी अधिक श्रेष्ठ हो सकते हैं। आज के सूत्र बता रहे हैं कि गृहस्थों के क्या दायित्व हैं, उसके क्या कर्त्तव्य हैं और वह किस प्रकार जीवन व्यतीत करे कि वह संसार में रहते हुए भी मुक्ति, सिद्धि और निर्वाण प्राप्त कर सके।

सूत्र है—

संति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था संजमुत्तरा
गारत्थेहिं सव्वेहिं साहवो संजमुत्तरा।।

'साधु संयम में गृहस्थ से श्रेष्ठ होते हैं, लेकिन कुछ गृहस्थ भी ऐसे होते हैं जो साधुजनों से अधिक श्रेष्ठ होते हैं।' और ऐसे गृहस्थ सदा प्रणम्य होते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। मैंने भी बहुत से अनासक्त श्रावक देखे हैं। मैं साक्षी हूँ एक ऐसी घटना का जिसे जानकर आप भी नतमस्तक हो जाएँगे। हम जब कलकत्ता में थे, तब की घटना है। एक श्रावक भाई पौषध लिए हुए था कि रात्रि आठ बजे कुछ लोग आए और बोले आपका पुत्र दुर्घटनाग्रस्त होकर चल बसा है। उस श्रावक ने कहा, 'मैं तो अभी पौषध में हूँ, तुम्हारे जो गुणधर्म हों, उन्हें सम्पन्न कर लो।' उनका एकमात्र पुत्र चल बसा और वे निर्लिप्त भाव से स्वीकार कर रहे हैं। वे रात भर पौषध में ध्यान-मग्न रहे कि कहीं मोहनीय भाव उत्पन्न न हो जाए। सुबह सात बजे पौषध पूर्ण करके ही वह श्रावक घर गया।

जो गृहस्थ कीचड़ में कमल की तरह रहते हैं अपने जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन नहीं होने देते, वे गृहस्थ प्रणम्य हैं। जो जीवन में उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम निर्मलता, उत्तम पवित्रता से भरे हुए हैं; जिनका हृदय पवित्र है, विचार पवित्र हैं, जिनका शरीर और वृत्ति पवित्र है, जिनकी दृष्टि, जिह्वा और शब्द पवित्र हैं, ऐसे गृहस्थ धन्य हैं।

मुझे याद है, एक युवक किसी साधु के पास पहुँचा और पूछा—'मैं गृहस्थ बनूँ या संत होऊँ, मार्गदर्शन दें।' संत ने कहा—'तू मेरे साथ चल।' और वे उसे दूसरे नगर में ले गए, जहाँ स्वयंवर मंडप सजा हुआ था। विभिन्न देशों के राजा और राजकुमार राजकुमारी को वरण करने की इच्छा से वहाँ उपस्थित हुए थे। राजकुमारी वरमाला लेकर उपस्थित हुई। तभी उधर से एक युवा फकीर निकला। राजकुमारी ने देखा और उसने न जाने क्या सोचा कि वरमाला उस युवा फकीर के गले में डाल दी। फकीर ने इसका निषेध किया और तेज गति से रवाना हो गया। राजकुमारी भी उसके पीछे-पीछे चलने लगी। उस संत और युवक ने यह दृश्य देखा। संत ने कहा, 'हम भी इसके पीछे चलते हैं और देखते हैं कि आगे क्या होता है।' चलते-चलते जंगल में पहुँच गए। वहाँ देखा कि युवा फकीर तो दिखाई नहीं पड़ रहा, राजकुमारी अकेली खड़ी थी। बहुत समय बीत गया। अचानक राजकुमारी बोली, 'मुझे भूख लग रही है।' दोनों ने इधर-उधर देखा वहाँ कोई फल नजर नहीं आया। राजकुमारी भूख से तड़पने लगी। रात गहरी हुई, ठंड भी बढ़ने लगी। दोनों ने तिनके-लकड़ी इकट्ठे कर अलाव जलाया, लेकिन वह कन्या भूख से छटपटा रही थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिस वृक्ष के नीचे अलाव जलाया गया था, उस वृक्ष पर चिड़िया का जोड़ा बैठा था। हालांकि ऐसा होता नहीं है, पर ऐसा हुआ। नर पक्षी बोला, 'लगता है हमारे यहाँ अतिथि आए हैं और भूखे प्रतीत होते हैं। तू बच्चों का ध्यान रखना, मैं अग्नि में गिर जाता हूँ और झुलस जाऊँगा तो वे अपने आप खा लेंगे।' ऐसा ही हुआ, लेकिन राजकुमारी थी कि भूख से व्याकुल हुई जा रही थी। मादा चिड़िया भी आग में गिर पड़ी, फिर भी उसकी भूख शांत नहीं हुई। तब बच्चों ने सोचा कि अतिथि के लिए हमारे माता-पिता ने प्राण उत्सर्ग कर दिये, तो हम भी क्यों न अतिथि-सत्कार के निमित्त स्वयं की आहुति दे दें। और बच्चे भी अग्नि में झुलस गए। सुबह हुई तो राजकुमारी अपनी राह चली गई। संत और युवक पीछे बचे रहे। वे दोनों भी आश्रम में आ गए। युवक ने पूछा, 'मेरे प्रश्न का उत्तर ?' 'दे तो दिया', संत ने कहा। युवक ने कहा, 'लेकिन मुझे तो समझ में नहीं आया।' तब संत ने कहा, 'अगर मुनित्व स्वीकार करना है तो उस संत की तरह होना जो राजकुमारी के द्वारा वरमाला डाली जाने पर भी आसक्त नहीं हुआ, संसार उसे खींच नहीं सका और अगर गृहस्थ में रहो तो उस चिड़िया के परिवार की तरह रहना जो अतिथि-सत्कार के लिए अपने प्राण तक भी विसर्जित कर दे।'

रे, रे समकित जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अंतर से न्यारो रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल।।

तुम गृहस्थ रहो तो एक धाय की तरह, किसी नर्स की तरह रहो। तुम देखते हो अस्पतालों में नर्स अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए मरीजों की देखभाल करती है। लेकिन किसी मरीज से नाता नहीं जोड़ती। ठीक इसी तरह संसार में अपने कर्त्तव्यों का पालन करो और किसी से आसक्ति मत बनाओ। नर्स रोगी की सेवा करने के बावजूद आंतरिक रूप से उससे मुक्त रहती है, महज अपने कर्त्तव्य और फर्ज का निर्वाह करती है। वैसे ही गृहस्थ भी नर्स की तरह मुक्त और अनासक्त रहें। भगवान कहते हैं, ऐसे गृहस्थ संत से श्रेष्ठ हो सकते हैं।

श्रावक-धर्म का पालने करने लिए भगवान का सूत्र है—

दाणं पूया मुक्खं, सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणसं मुक्खं, जइधम्मे तं विणा तहा सो वि।।

श्रावक धर्म में दान और पूजा मुख्य हैं। इनके बिना व्यक्ति श्रावक नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो पाता और श्रमण-जीवन में ध्यान और स्वाध्याय मुख्य हैं, इनके बिना श्रमण नहीं हुआ जा सकता।

श्रावक के लिए दान और पूजा दो मुख्य धर्म हैं और श्रमण के लिए ध्यान और स्वाध्याय। दान देने से अपरिग्रह की वृत्ति फलित होती है और पूजा करने से श्रावक स्वयं के भीतर छिपे परमात्मा को देखने की दृष्टि प्राप्त करता है। हम तो दान भी यश के लिए करते हैं। कहाँ नाम लिखा जा रहा है, किस प्रस्तर पर नाम उत्कीर्ण होने वाला है, यह देखकर दान किया जाता है। वहाँ कोई अपरिग्रह का भाव नहीं होता। यश और प्रसिद्धि की कामना होती है। दान समर्पण की भावना से नहीं दिया जाता, न ही सहयोग की भावना से दिया जाता है, केवल नाम कमाने के लिए ही दान दिया जा रहा है। हृदय से दिया गया दान कीमती है चाहे वह एक कौड़ी का ही क्यों न हो।

एक बड़ी प्रसिद्ध ईसाई संत महिला हुई हैं—थैरेसा। उसने सोचा कि मैं चर्च का निर्माण कराऊँगी। वह एकदम निर्धन संत थी किसी भिक्षु की तरह। उसने चर्च में एकत्र भक्तों से कहा कि मैं एक विशाल चर्च बनाना चाहती हूँ। भक्तों ने कहा—तुम्हारे पास इतना पैसा कहाँ है कि चर्च बना सको। तुम्हारे पास आखिर कुल कितनी संपत्ति है। थैरेसा ने कहा—'मेरे पास दो पैसे हैं' और जेब से निकालकर दो पैसे रख दिए। लोग हँसने लगे, उन्होंने कहा कि तू पागल हो गई है। दो पैसों से कहीं चर्च बनता है ! थैरेसा ने कहा कि मेरे पास दो पैसे हैं और एक पैसे वाला और है। लोगों को पता था कि अन्य कोई धन-संपन्न व्यक्ति थैरेसा का भक्त नहीं है। लोगों ने पूछा—वह कौन है। थैरेसा ने कहा—मेरे दो पैसे+मेरा परमात्मा। मैं अकेली नहीं हूँ। मेरे साथ परमात्मा भी है। फिर तीसरे की क्या जरूरत ! और कहते हैं कि विश्व का सबसे विशाल और सुंदर चर्च उन दो पैसों की नींव पर खड़ा है।

जिस दान में यश की कामना नहीं है वह परमात्मा से जुड़ जाता है और यश से जुड़ा हुआ दान व्यर्थ हो जाता है। लेकिन हमारी तो आकांक्षा होती है कि जो हमने किया है सामने वाला उसका आभार माने। हम देते हैं तो वापस पाने की इच्छा भी रखते हैं। हम चाहते हैं कि जो हम दे रहे हैं सूद समेत वापस मिल जाए। इसलिए प्रभु ने कहा कि व्यक्ति यही मानकर दान दे कि उसके पास आवश्यकता से अधिक है; इसलिए दे, क्योंकि देने से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द मिलता है। दान दो समर्पण की भावना से, आनन्द-भाव से। दान के बदले में यश की कामना न रखो। आपने देलवाड़ा और राणकपुर के मंदिर देखे होंगे, क्या वहाँ किसी का नाम लिखा देखा है; कोई पत्थर लगा है जो दानदाता की सूची बता सके ?

गृहस्थ का पहला दायित्व है कि अपने पास आवश्यकता से अधिक होने पर सहर्ष दान करे। दूसरा दायित्व है पूजा—गुरु की पूजा, धर्म की पूजा, देव की पूजा, ईश्वर की पूजा। ईश्वर की पूजा करके हम अपने भीतर के ईश्वरीय तत्त्व को पहचानते हैं और खुद की भगवत्ता को पहचानने में सफल होते हैं।

गृहस्थ के साथ भगवान श्रमण के दायित्व भी बताते हैं। वे कहते हैं कि श्रमण को ध्यान और स्वाध्याय करना चाहिए। इस आधार पर दो श्रेणियाँ स्पष्ट हैं—गृहस्थ और साधु की। गृहस्थ अगर दान और पूजा करके मुक्त हो सकता है तो साधु ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा। श्रमण के हाथ से अगर ध्यान का धागा छूट रहा है, तो समझो जीवन छूट रहा है। श्रमण के पास सबकुछ हो—बाह्य वैभव, सम्पन्न लोगों का जमावड़ा, राजनीति में पैठ, लेकिन ध्यान की संपदा न हो तो ये सब चीजें बेकार हैं। राष्ट्र-संत तो सहजता से बना जा सकता है, लेकिन आत्म-संत होना बहुत मुश्किल है। धर्मगुरु कहलाना आसान है, धर्म सभाओं में प्रवचन देना भी वाग्मिता है, लेकिन ध्यान से गुजरना बहुत मुश्किल है। चार घंटे प्रवचन दिया जा सकता है, पर चालीस मिनट ध्यान लगाना बहुत मुश्किल है।

श्रमण ध्यान से विमुख हो रहा है तो धर्म से च्युत हो रहा है, श्रमणत्व से गिर रहा है। उसका धर्म केवल उपधान कराना नहीं है और न ही यह सूची बनाना कि उसने कितने मंदिरों का शिलान्यास किया या प्रतिष्ठा करवाई। एक समय था जब संत की पहचान उसकी सादगी, चरित्र, ध्यान और स्वाध्याय से होती थी, लेकिन आज....? धनिक वर्ग ने संतों को उनके चारित्र्य से अलग करने को विवश कर दिया है। धनिकों ने धन खर्च करके अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानी शुरू कर दी है और संतों ने धनिकों की खुशामद करके स्वयं को प्रतिष्ठाचार्य बना लिया है। अरे, वह परमात्मा की क्या प्रतिष्ठा करेगा जो आत्म-प्रतिष्ठित नहीं हो पाया है। आप देखते हैं कि प्राचीन प्रतिमाएँ कितनी प्राणवंत हैं, उनका अतिशय है, जबकि अब उनमें कोई अतिशय नहीं रह गया है, जो आए दिन प्रतिष्ठित होती रहती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज के संत मात्र व्यवस्थाओं में ही अपनी ऊर्जा लगाते रहते हैं। उनके पास ध्यान और स्वाध्याय का समय ही नहीं है। क्या आप जानते हैं कि चार माह वर्षावास की व्यवस्था क्यों की गई ? चातुर्मास की अवधारणा ही यही है कि मुनि किसी एक स्थान पर रहकर आत्मध्यान कर सके। लेकिन आज स्थिति यह है कि बाहरी व्यवस्थाओं में उलझकर संत आत्मध्यान की स्थिति भूल चुके हैं। संत भी प्रतीक्षा करते हैं कि उनका अमीर भक्त आने वाला है। वे उसकी आकांक्षा के अनुरूप अपना कार्यक्रम निर्धारित करते हैं। यह एक कड़वा सच है, लेकिन सच कब तक छिपाया जाएगा।

मुनि के लिए कहा गया कि वह प्रथम प्रहर में ध्यान करे, दूसरे प्रहर में स्वाध्याय करे, तीसरे प्रहर में अपने आहार-विहार और निहार की व्यवस्था करे और चौथे प्रहर में पुनः ध्यान में लीन हो जाए। भगवान ने कहा, जो ध्यान और स्वाध्याय में जीता है वही श्रमण है। पर आज संत जागरण का, होश का, ध्यान का मार्ग नहीं तलाश रहे हैं, फलस्वरूप खुद भी डूब रहे हैं और दूसरों को भी डुबो रहे हैं। जब तक ध्यान और स्वाध्याय मुनि-जीवन में नहीं उतरता उसका मुनित्व सार्थक नहीं हो सकता।

मुझे अफसोस होता है जब मैं देखता हूँ जैन संत भी धनिकों को प्रश्रय देते हैं। सोचता हूँ कि श्रमण और श्रावक का संबंध भी धन पर निर्भर हो गया है। एक समय था जब मुनि गृहस्थ में श्रावकत्व देखा करते थे आज तो वे केवल धन देखते हैं। उनकी दृष्टि भी धन पर स्थिर हो गई है।

मुझे याद है भारत से एक प्रतिनिधि मंडल ब्रिटेन गया। गलती से एक बिल्ली भी हवाई जहाज में घुस गई। प्रतिनिधि मंडल ने देखा, सोचा चलने दो भारत की बिल्ली है, वापस ले आएँगे। ब्रिटेन में एक सेमिनार का आयोजन था। उसमें ब्रिटेन की महारानी भी शिरकत करने वाली थीं। वे आईं और एक रत्नजड़ित सिंहासन पर आरूढ़ हो गईं। छः घंटे सेमिनार चला। सेमिनार के बाद प्रतिनिधि मंडल वापस आया, बिल्ली भी साथ आ गई। बिल्ली के हवाई जहाज से उतरते ही पत्रकारों ने बिल्ली से पूछा, 'तू छः घंटे सेमिनार में रही, बता वहाँ क्या देखा ?' बिल्ली ने कहा, 'मैंने तो ब्रिटेन की महारानी की कुर्सी के नीचे चूहा देखा। मैं नहीं जानती छः घंटे क्या हुआ, मेरी नजर तो उस चूहे पर टिकी थी।' अब जिसकी नजर चूहे पर हो, वह छः घंटे क्या, छः साल तो क्या, छः जन्मों तक भी जिए, उसे चूहे के अतिरिक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्य कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। ठीक ऐसे ही आज संतों की नज़र में श्रावक की सादगी नहीं, सम्पन्नता प्रमुख हो गई है।

सूत्र है—

जो मुणिभुत्तविसेसं भुंजइ सो भुंजइ जिणुवदिट्ठं।
संसारसार सोक्खं कमसो णिव्वाणवरसोक्खं।।

'जो गृहस्थ मुनि को भोजन समर्पित करने के पश्चात् बचा हुआ भोजन स्वीकार करते हैं, उन्हीं का भोजन करना सार्थक होता है। वे जिनोपदिष्ट संसार का सारभूत सुख तथा क्रमशः मोक्ष को प्राप्त होते हैं।'

वह श्रावक मुक्ति-लाभ पाता है जो साधुओं को कल्पनीय किंचित् भी आहार समर्पित करता है; जो साधुओं को आहार देने के पश्चात् भोजन करने में धन्यभागिता समझता है। वह अपने इस उदार-भाव और संविभाग-सौजन्य के कारण क्रमशः मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। इतना समर्पण, इतना अहोभाव कि आनन्द का झरना फूट पड़े। निश्चित ही मोक्ष उसके लिए है। क्या तुम्हारे अंदर आज वह भाव है कि खीर का एक कटोरा मुनि को अत्यंत समर्पित भाव से देने पर शालिभद्र का जन्म हो जाए ? लोग तो साधुओं की सेवा-चर्या व्यवहार निभाने को करते हैं, कहीं भक्ति या समर्पण की सुवास दिखाई नहीं देती।

भगवान कहते हैं कि हर गृहस्थ अवढर दानी बने। अपने पास जो है, उसे वह मानवता के लिए समर्पित करे और ईश्वर की, परमात्मा की पूजा-अर्चना-भक्ति करे। ये दो मंगलमयी मंत्र हैं। साथ ही व्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और स्वदार संतोष व्रत को अंगीकार करे। वह व्यसन-मुक्त जीवन जिए। इसे आप गृहस्थ के लिए श्रावक-धर्म जानें।

आज हमने भगवान की पावन वाणी में से जीवन के कुछ जीवंत सूत्रों को जानने का प्रयास किया है। हम इन सूत्रों को अन्तर्-घट में उतारें और उनका अनुगमन करें। भगवानश्री की वाणी तभी सार्थक होगी जब हम अमल करें कि कुछ गृहस्थ साधुओं से भी श्रेष्ठ होते हैं। अपनी श्रेष्ठता बढ़ाएँ, अपने जीवन-मूल्यों को स्वीकार करें, नैतिक आदर्शों को स्वीकार करें और गृहस्थ के दायित्वों को वहन करें। ऐसा हो, तो आपका गृहस्थ होना भी सार्थक हो जाए।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधना की सच्ची कसौटी

जीवन कसौटियों से घिरा हुआ है। यों तो जन्म के साथ ही संघर्ष और कसौटियाँ शुरू होती हैं, पर ज्यों-ज्यों व्यक्ति जीवन के रणक्षेत्र में उतरता है, त्यों-त्यों कसौटियाँ बढ़ती जाती हैं। कसौटियों के रूप बदल जाया करते हैं। स्वर्ण को तो कसौटी-पत्थर पर घिसकर उसकी शुद्धता जाँचते हैं, लेकिन किसी साधक की, मुनि की कसौटी क्या है ? उसकी साधना ही है जो साधक की मूल चेतना, क्षमता और सहनशीलता को प्रकट करती है।

मैंने पाया है कि एक साधक, एक मुनि या अग्रगण्य को ही सर्वाधिक कसौटियों पर कसा जाता है। भगवान बुद्ध और भगवान महावीर जब राजमहलों में थे, पाँव में काँटा भी नहीं चुभा होगा लेकिन महलों का त्याग करते ही.....! आप जानते ही हैं कि ध्यानस्थ अवस्था में ग्वाला उनके कानों में कीलें ठोंक गया। अगर वे राजकुमार होते तो क्या ग्वाला कीलें दिखाने की भी हिम्मत कर सकता था ? सांसारिक व्यक्ति को कौन कसौटी पर परखता है ! यह तो केवल साधक के साथ ही होता है। क्या लोहा कभी कसौटी पर कसा जाता है? इसलिए साधक को साधना करते हुए जितनी दुविधाएँ, विपदाएँ आती हैं एक गृहस्थ पर इतनी नहीं आतीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधना के मार्ग से साधक को विचलित करने के लिए कभी अनुकूल, कभी प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं; कभी प्रतिकूल उपसर्ग, कभी अनुकूल स्थितियाँ बनती हैं। साधना कसौटी के राजद्वार से गुजरती है और इस कसौटी पर खरे उतरने वाले व्यक्तित्व ही भगवत् तुल्य हो पाते हैं। आज भगवान जो सूत्र दे रहे हैं वे गौरीशंकर के शिखर को छूने वाले सूत्र हैं। जीवन की सामान्य व्यवस्थाओं की जानकारी तो हो चुकी है, अब साधना के मार्ग पर बढ़े चलो और आने वाले अवरोधों पर विजय प्राप्त करो। छोटी-छोटी बातों पर डाँवाडोल न हो जाएँ। यह साधना का मार्ग है, यहाँ दो कदम भी आगे बढ़ाए कि लोगों द्वारा काँटे ही बिछाए जाते हैं। यह तुम्हारे साथ भी होगा। अतीत हमें बताता है कि जिसने भी सत्य को जानने की कोशिश की या जानकर उसे प्रगट करने की कोशिश की, उसे जहर के प्याले ही दिए गए, उसे क्रॉस पर ही लटकाया गया, उसके पाँव पर अंगीठी जलाई गई, उसे नानाविध अपमानित किया गया। ऐसा होगा ही, क्योंकि सोना जब तक तपेगा नहीं कुंदन नहीं बन पाएगा। पानी जब तक खौलने को तैयार न होगा, भला भाप कैसे बन पाएगा।

आज के सूत्र उस साधक के लिए हैं जो साधना के मार्ग पर चलना शुरू कर चुका है और आने वाली समस्त अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अडिग है। उसके अन्तरमन में अभीप्सा जग ही चुकी है परिनिर्वाण के अन्तिम चरण का स्पर्श पाने की। भगवान के सूत्र साधना की गहराई से जुड़े हैं। उनका आज का संदेश है कि साधक कैसा हो, उसके जीवन की क्या परिभाषा हो, उसकी जीवन व्यवस्था क्या हो कि वह साधक कहला सके और साधना के तत्त्व को उपलब्ध हो सके।

सूत्र है—

सीह-गय-वसह-मिय-पसु, मारुद-सूरूवहि-मंदरिदु-मणी।
खिदि-उरगवरसरिसा परम-पय-विमग्गया साहु।।

भगवान से पूछा गया कि साधु कैसा होना चाहिए ? तब भगवान ने इन चौदह उपमाओं से युक्त व्यक्ति को साधु कहा, साधक कहा। सिंह-सा पराक्रमी, हाथी-सा स्वाभिमानी, वृषभ-सा भद्र, मृग-सा सरल, पशु-सा निरीह, वायु-सा निसंग, सूर्य-सा तेजस्वी, सागर-सा गंभीर, मेरु-सा निश्चल,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंद्रमा-सा शीतल, मणि-सा कांतिवान, पृथ्वी-सा सहिष्णु, सर्प-सा अनियत आश्रयी तथा आकाश-सा निरालंब साधु ही परमपद मोक्ष की यात्रा पर है।

यह क्रांतिकारी सूत्र है। महावीर जैसे व्यक्ति ही ऐसे सूत्रों की अभिव्यक्ति दे सकते हैं। इस सूत्र में ऋजुता, मृदुता और भद्रता तो है ही साथ ही साधना की तेजस्विता भी है। मृग-सा सरल, पर सिंह-सा तेजस्वी। अद्‌भुत प्रयोग है यह। साधक की प्रथम उपमा है—सिंह सा पराक्रमी। सिंह अकेला, निडर विचरता है। उसे टोले की जरूरत नहीं होती। 'सिंहों के नहीं लेहड़े, साधु न चले जमात।' रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है, 'जदि तोरे डाक सूने कोउ न आसे तोए एकला चलो रे।' सिंह किसी संगठन का हिस्सा नहीं होता, न ही किसी सम्प्रदाय का अंग होता है। वह अपने ही बल, अपने पैरों पर है, अकेला, बिल्कुल अकेला ही जीता है। महावीर अपने साधना-काल में बारह वर्षों तक सिंह की तरह विचरे, नितान्त अकेले। वे न किसी से बोलते, न किसी का संग-साथ करते। जंगलों में, पहाड़ों में, गाँव-गाँव नगर-नगर में महावीर की ही मौन गर्जना, सिंहनाद थी।

सिंह की तरह पराक्रमी बनना होगा। साधना के लिए सबकुछ दाँव पर लगाना होगा, जरा भी बचाया कि चूक गए। महावीर सिंह की तरह पराक्रमी थे। हमारे चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय कुल से सम्बन्धित थे। क्षत्रिय कभी आश्रय की तलाश नहीं करता, वह अपने ही पुरुषार्थ और पराक्रम से लक्ष्य का संधान करता है। महावीर के जीवन की एक अद्‌भुत घटना है। कहते हैं महावीर साधना-काल के प्रारम्भिक चरण में थे। एक ग्वाला आया और साधना में खड़े महावीर को अपनी गायें रखवाली के लिए दे गया। सांझ को वापस आया तो देखा महावीर तो वैसे ही साधना में खड़े हैं पर गायें नदारद थीं। उसने महावीर से अपनी गायों के बारे में पूछा, मगर महावीर तो ध्यान और मौन में थे, सो कोई जवाब न दिया। क्रोधित ग्वाले ने महावीर की चाबुक से पिटाई करनी चाही। तभी इन्द्र ने प्रकट होकर ग्वाले को लताड़ा और प्रभु से कहा आपके साधनाकाल में कई संकट आएँगे, अगर आप अनुमति दें तो मैं संकट निवारण के लिए सेवा में रह जाऊँ।

महावीर ने तब मुस्कराते हुए कहा कि साधना स्वयं के पराक्रम और पुरुषार्थ से ही पूर्ण होती है। इसमें भला किसी के सहयोग की कैसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा। सच में, अगर महावीर का लांछन-चिह्न सिंह है, तो महावीर सिंहवत् पराक्रमी थे।

धर्म आज इसलिए मुक्तिदायी या साधनानिष्ठ न रहा क्योंकि हमारी भीरुता ने धर्म के प्रति आवश्यक पराक्रम को नष्टप्रायः कर दिया है। मुक्ति कभी गुनगुने पानी से नहीं मिलती, इसके लिए खौलना पड़ता है, भाप बनने के लिए तैयार होना होता है। महावीर का मार्ग मूलतः साधना का मार्ग है। साधना में समर्पण तो चाहिए ही, उससे पूर्व दृढ़ संकल्प की भी आवश्यकता है। यह तो तलहटी से शिखर की यात्रा है। चौबीसों तीर्थंकरों का क्षत्रिय होना महज संयोग नहीं हो सकता। अहिंसक होने के लिए पराक्रमी होना जरूरी है। ताकि हम अहिंसा और करुणा के नाम पर कायरता की बजाय वीरत्व के मालिक बन सकें। हम वही त्याग सकते हैं जो हमारे पास हो। ऋषभ, नेमि, महावीर, बुद्ध सभी क्षत्रिय राजघरानों में पैदा हुए। युद्ध-कलाओं को सीखते हुए उनका पालन-पोषण हुआ। हिंसा, युद्ध, विजय के अतिरिक्त वे कुछ जानते ही न थे। उसी हिंसा के प्रगाढ़ अनुभव से अहिंसा का जन्म हुआ। हिंसा के वातावरण में जीकर-रहकर पाया कि हिंसा त्याज्य है और तब अहिंसा का जन्म हुआ। भोगों में जीकर पाया कि भोग त्याज्य है, तब जीवन में योग का जन्म हुआ। महावीर की अहिंसा तो सिंह के पराक्रम से आई और पराक्रम तो क्षत्रिय से ही सीखना पड़े, सिंह से सीखना पड़े। हिंसा से भी बड़ा पराक्रम है अहिंसा। इसलिए महावीर की अहिंसा ने व्यक्ति को कायरपन नहीं दिया। महावीर की अहिंसा ने सहनशीलता, प्रेम और करुणा प्रदान की है। अहिंसा का अर्थ अनन्त प्रेम, अनन्त करुणा—इन सबका गहरा अर्थ होता है कष्ट सहन की अनन्त क्षमता।

महावीर की अहिंसा धर्म का ज्वलंत रूप है। महावीर नहीं कहते कि मुझे दुःख मत पहुँचाओ या मुझे मत मारो। मारना है तो मारो पर यह तुम्हारी नासमझी है। क्योंकि मैंने यह अनुभव किया है कि मारने में कुछ सार नहीं है, इसलिए मैं किसी को नहीं मारता हूँ। उनकी नजरों में अपने को असुरक्षा में छोड़ देने से बड़ा कोई पराक्रम नहीं है, जो स्वयं को सहजता से प्रकृति के हवाले कर देता है, प्रकृति स्वतः उसकी सुरक्षा के इंतजाम करती है। लेकिन आज हम हरेक को सुरक्षा के दायरे में घिरा देखते हैं। नेता भी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिपाही भी, साधु या श्रावक सभी अन्योन्याश्रित हो गए हैं। कभी-कभी तो धनिकों को साधुओं पर अपनी व्यवस्थाएँ और व्याख्याएँ थोपते हुए भी पाया जाता है और जो संत इनसे इंकार करता है, उसके प्रति निंदाएँ प्रचारित की जाती हैं। अरे, संत को तो साधनारत रहने दो।

महावीर कहते हैं कि साधक सिंह की तरह पराक्रमी बने कि उस पर किसी का निर्णय न थोपा जा सके। कोई ऐसा दुस्साहस करे तो उसके मुँह से यही निकले, 'अपने निर्णय तुम रखो, मेरे लिए दुनिया के हजार रास्ते हैं।' अगर महावीर को गुरुकुल की व्यवस्थाओं में बाँधने की कोशिश की जाती है तो वे वहाँ नहीं ठहरते। जो व्यवस्थाओं के बंधन से मुक्त होकर आया है, वह मुक्त ही बना रहे।

साधक या संत कभी अपनी वृत्तियों से, व्यवस्थाओं से और बाह्य विघ्नों से पराजित न हों। वह सिंह की तरह पराक्रमी रहकर स्वयं के क्षत्रियत्व को उपलब्ध कर मुक्ति प्राप्त करे।

साधक के लिए दूसरा संदेश है कि उसे हाथी की तरह स्वाभिमानी होना चाहिए। उसमें किंचित भी अहंकार न हो। स्वाभिमान और अभिमान में फर्क है। साधक स्वाभिमान में जिए पर अभिमान या अहंकार में नहीं। अभिमान जहाँ आत्म-गर्व का परिचायक है वहीं स्वाभिमान आत्म-गौरव का। गर्व का परित्याग हो पर सावधान! गौरव बरकरार रहे। कुछ लोग व्यर्थ का अभिमान पालते हैं। होंगे जीरो पर स्वयं को हीरो मान बैठेंगे। अधिकांश लोग तो थोथा चना बाजे घना वाली आदत के होते हैं। मैं तो आकाश को देखता हूँ तो बोध जगता है एक दिन ऊपर जाना है फिर किसका अहंकार और जब जमीन को देखता हूँ तो लगता है सबकुछ इसी मिट्टी में मिल जाना है फिर किसका अहंकार। धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद, रूप-सौन्दर्य सभी कुछ नष्ट ही तो होता है। अगर गरीब हाथ पसारे जाता है तो अमीर की जाते समय कौनसी मुट्ठी बंद रहने वाली है। काले आदमी की मरने-जलने पर राख काली होती है तो गोरे की कौनसे गोरी होती है। राख के स्तर पर तो गोरा-काला दोनों एक ही रंग में ढलने हैं। इसलिए महावीर ने कहा, साधु हाथी जैसा स्वाभिमानी—मस्त प्रकृति का हो। हाथी किसी मान-अपमान की परवाह नहीं करता। एक बार किसी ने कबीर से कहा—लोग आपकी बहुत बातें करते हैं कि कभी आप मंदिर के विरोध में होते हैं, कभी मस्जिद का विरोध करते हो,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कभी कुछ दूसरा विरोध। क्या लोगों की इस निंदा से आप प्रभावित नहीं होते ? तब कबीर ने कहा—

तू तो राम सुमिर, जग लड़वा दे
हाथी चलत है अपनी गति से, कुतर भुसत वाको भुसवा दे।

हाथी भौंकने वाले कुत्तों की फिक्र नहीं करता। वह अपनी मस्त चाल में चलता जाता है। उसे अपने बल पर भरोसा है, लेकिन बल की कोई घोषणा नहीं है। यहीं हाथी सिंह से भिन्न है, क्योंकि सिंह में अभिमान है।

ईसप की प्रसिद्ध कहानी है कि एक सिंह जंगल में गया और सबसे पूछने लगा कि इस जंगल का राजा कौन है ? सियार से पूछा तो सियार ने कहा, 'आप, आपके अलावा कौन !' लोमड़ी से पूछा, उसने कहा 'आप महाराजा हैं, सम्राट हैं।' खरगोश से पूछा, चीते से पूछा, सभी पशुओं से पूछा सभी ने यही कहा—'आप ही राजा हैं, आप ही हमारे सम्राट।' फिर वह हाथी के पास आया और पूछा, 'बताओ इस जंगल का राजा कौन है ?' हाथी ने अपनी सूँड में सिंह को फँसाया और दूर फेंक दिया। सिंह नीचे गिरा, धूल झाड़कर फिर वापस आया और बोला कि अगर तुम्हें मालूम नहीं है, तो नाराज होने की क्या बात है।

हाथी की कोई घोषणा नहीं है, वह स्वयं में मस्त है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो लोग अपने अहंकार की घोषणा करते हैं वे हीनभाव से ग्रस्त होते हैं। अगर तुम्हें भीतर पता होता है तो तुम घोषणा नहीं करते। जो नहीं है, उसकी घोषणा करनी पड़ती है। जब तक हम दूसरे से भरोसा न पा लें, तब तक हमें भरोसा ही नहीं आता। ऐसा भरोसा बेकार है, जो दूसरे के कारण मिलता है। भरोसा स्वयं का रखो। हाथी को देखो कोई घोषणा नहीं करनी पड़ती। सिंह में, प्रगटतः अक्खड़पन हो सकता है। पर हाथी, वह चलता है, उठता है, बैठता है तो एक साधुक्कड़ी मस्ती झलकती है। हाथी चलता है तो कुत्ते भौंकते रहते हैं, वह पलटकर भी नहीं देखता, नाराज भी नहीं होता। वह जानता है कुत्ते हैं, भौंकेंगे। वह चलता रहता है अपनी मंथरगति से। भगवान कहते हैं—साधक हाथी-सा स्वाभिमानी हो।

भगवान साधक के लिए तीसरी बात कहते हैं—वृषभ की तरह भद्र बनो। बैल से ज्यादा भद्र कोई प्राणी नहीं है। बैल में अपरिमित शक्ति होती है, लेकिन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फिर भी वह शांत पशु है। वह अपने बल से खेतों को जोतता है,सामान ढोता है, यात्रा कराता है। मनुष्य जाति का पूरा इतिहास, पूरी सभ्यता सौ वर्ष पहले तक बैलों के कंधों पर टिकी थी। मशीनें और यंत्र तो अभी ईजाद हुए हैं। बैल की भद्रता विरल है। उसने आज तक कोई बगावत नहीं की। वह चुपचाप सेवा करता रहा। उसका व्यवहार सज्जनोचित है। इसलिए महावीर कहते हैं 'वृषभ-सा भद्र'।

आगे भगवान कहते हैं 'मृग-सा सरल।' मुनि कैसा हो, मृग की तरह सरल। देखना कभी मृग की आँख, कितनी सरल, भोली और निष्पाप होती है। इसीलिए अति सरल कुँआरी कन्या को हम मृगनयनी कहते हैं। जिसकी आँखों में सरलता, भव्यता, ऋजुता छलककर आती हो उसे मृगनयन कहा जाता है। मृग जैसी कोरी, निर्मल आँखें कि जिसने कुछ पाप जाना ही नहीं, जिसने अभी दुनियादारी के दाँव-पेंच नहीं सीखे। जीसस कहते हैं कि जो बच्चे-सा सरल, निर्मल, निर्दोष होता है वही स्वर्ग का अधिकारी होता है। वही निर्मलता, निर्दोषिता और सरलता मृग की आँखों में होती है। साधु का लक्षण भी महावीर कहते हैं, मृग-सा सरल, सहज हो। इसी को कबीर ने कहा है, 'साधो, सहज समाधि भली'। महावीर के ये शब्द भीतर उतर जाने चाहिए, 'मृग जैसी सरलता'। धर्म के प्रमुख चरणों में एक चरण है--आर्जव। आर्जव यानि सरलता। जो आर्जव-युक्त है वह धार्मिक है। जिसके स्वभाव में सरलता और ऋजुता है उसकी गति, मति, भावना एवं आचरण सभी सरल होते हैं।

साधु का पाँचवाँ लक्षण है, 'पशु-सा निरीह'। पशु में अत्यधिक निरीहता है। असहाय अवस्था है पशु की। साधु ऐसा ही असहाय होगा विराट संसार के उपद्रवों के मध्य। महावीर ने पशुओं को बहुत सम्मान दिया। ये सारे प्रतीक पशुओं से लिए गए हैं। पशुओं से बहुत कुछ सीखने जैसा है। पशु जैसी सरलता, निरीहता, असहाय अवस्था बड़ी दुर्लभ है। सभ्यता ने मनुष्य की मनुष्यता को समाप्त कर दिया है, उसे पशु बना दिया है। पशु भी ऐसा कि जिसमें सहजता-सरलता नहीं है, केवल पशुता है। सिंह शिकार करता है, हिंसा करता है लेकिन भोजन के लिए ही, खिलवाड़ के लिए नहीं। सिंह का पेट भरा हो तो हमला नहीं करता। आदमी भरे पेट हमला करता है आखेट, खेल, क्रीड़ा के नाम पर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कभी सोचा, अगर शेर शिकारी पर हमला कर दे तो हम खेल नहीं कहते और शिकारी बंदूकें लेकर सिंहों को छेदता रहे तो हम खेल कहते हैं। कभी कोई शेर किसी मनुष्य पर हमला कर दे, उसे घायल कर दे तो हम बौखला जाते हैं। पता है अब तक मनुष्य ने कितने शेरों को मारा है, अनगिनत है। वह भी केवल खेल-क्रीड़ा के नाम पर, अपने झूठे वीरत्व को प्रदर्शित करने के नाम पर। एक बार किसी महाराजा के यहाँ हमारा जाना हुआ। वे पूर्व महाराजा हैं, अभी महलों में ही रहते हैं। उन्होंने अपना महल घूम-घूमकर दिखाया। फिर एक कक्ष में ले गए जहाँ विभिन्न प्रकार के पशुओं के सिर, भूसा भरे हुए सिंह-चीते और भी कितने पशुओं की खाल आदि सजे हुए थे। कक्ष में प्रवेश करते ही वे कहने लगे, 'देखिए हमारे दादा महाराज कितने पराक्रमी थे, वे शिकार के लिए जाते थे और अकेले ही शिकार करते थे। यहाँ की सभी चीजें उन्हीं के द्वारा लाई गई हैं।' मैं सोचने लगा, हिंसा का प्रदर्शन एक अहिंसक के सामने ! क्या इसे हम पराक्रम कहेंगे। आदमी अन्याय करता है। पशुओं के जगत् में कोई अन्याय नहीं है। अगर भूख लगती है तो सिंह हमला करता है, क्योंकि प्रकृति ने उसे भोजन का वही उपाय दिया है।

तुम जब प्रेरणा देते हो तो कहते हो—पशु मत बनो, पर महावीर कभी-कभी अद्भुत प्रयोग कर लेते हैं। वे मिथ्यात्व के दलदल में भी सम्यक्त्व के फूल खिला लेते हैं। भगवान कहते हैं कि निरीहता पाने के लिए पशु जैसे निरीह बनो। जब भी तुम भीतर उतरोगे एक-एक परत खुलती जाएगी, तब तुम आदमी को वहाँ कहीं नहीं पाओगे। हर परत में सिंह है, परिधि से केंद्र तक। इसीलिए तो लोग अपने भीतर नहीं जाते। भीतर जाकर घबराहट होती है कि यह मैं क्या हूँ ? बातें होंगी आत्मा की, आत्म-दर्शन की, लेकिन दर्शन करना कोई नहीं चाहता। फिर भी इनसे गुजरना ही होगा तभी तुम उस तक पहुँच पाओगे जो तुम्हारा असली स्वरूप है, जिसे महावीर कहते हैं, 'पशु-सी निरीहता'।

भगवान साधक की अगली स्थिति बताते हैं, 'वायु-सी निःसंगता'—हवा बहती रहती है, लेकिन निसंग। फूलों के पास से निकल जाती है, मगर वहाँ रुकती नहीं है कि थोड़ी देर के लिए खुशबू का आनंद लिया जाए। नदियों के पास से निकल जाती है, सुंदर महलों में से गुजर जाती है, कहीं भी ठहरती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं। वह असंग भाव से बहती रहती है अकेली। महावीर कहते हैं निःसंग भाव साधु का आत्यंतिक लक्षण है। उसमें सबके प्रति मैत्री है, लेकिन वह मित्र किसी को नहीं बनाता।

मैत्री-भाव महावीर का गुण है लेकिन मित्र बनाना नहीं। मैत्री भाव सब जीवों से नित्य रहे, मगर उनके बंध मत जाना। मित्र बनाया कि रुक गए, ठहर गए। प्रेम को कहीं ठहराकर डबरा मत बनाना। हवा की तरह मुक्त रहना। हवा को कौन बाँध पाया ? हवा कहाँ रुकती है ? यात्रा, अनंत यात्रा और अकेले ही करते जाना। यही साधु गुण है।

'सूर्य-सा तेजस्वी....' यह साधक का एक विशिष्ट गुण है। यह सिर्फ प्रतीक नहीं है। भगवान कहते हैं कि जैसे ही व्यक्ति सरल होता है, भद्र होता है, निरीह होता है, निसंग होता है उसके भीतर ज्योति जलने लगती है। सूर्य-सा तेजस्वी हो जाता है व्यक्ति, रक्ताभ ! एक आभा उसके चारों ओर घिर जाती है। अभी तो मनुष्य पाखंड और कपट से भरा हुआ है। उसके भीतर ज्योति तो विद्यमान है, लेकिन कपट का आवरण पड़ा हुआ है। पाखंड से ज्योति बुझ जाती है। सरलता में धुआँ बिखर जाता है, आवरण अलग हट जाता है और ज्योति जलने लगती है। सच्चे साधक सूर्य जैसे तेजस्वी हो जाते हैं। उनकी आभा, उनकी वाणी तेजस्विनी हो जाती है। उनका प्रभामंडल सूर्य के समान विस्तृत हो जाता है।

'सागर जैसा गंभीर....' साधक की एक अन्य विशेषता है कि वह सागर के समान गंभीर होता है। सागर जैसा विराट। जिसकी कोई सीमा नहीं। जिसकी थाह पानी मुश्किल हो, ऐसा गहन, गंभीर। साधक जब अपनी साधना के शिखर पर पहुँचता है, तब उसे उपलब्ध सत्य एक गंभीरता प्रदान करते हैं। सामान्यजन शायद ही किसी साधक की थाह पा सके। उसकी गुरु-गंभीरता सागर जैसी गहन होती है।

महावीर साधक की नौंवी स्थिति बयान करते हैं—'मेरु-सा निश्चल...' मेरु पर्वत धार्मिक भूगोल का एक प्रतीक है। मेरु वह पर्वत है जो स्थिर है और जिसके चारों ओर सूर्य, चन्द्र जैसे अनगिनत नक्षत्र घूम रहे हैं। मेरु पर्वत शाश्वत रूप से स्थिर है। साधु वही है जिसने अपने भीतर के मेरु शिखर को पा लिया है, हिमालय की ऊँचाई प्राप्त कर ली है। 'मेरु-सा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निश्चल'—शरीर चलता है, लेकिन साधक स्थिर है। शरीर भोजन करता है, साधक नहीं करता। शरीर बोलता है साधु मौन है; शरीर जवान होता है, बूढ़ा होता है, मरता है। साधु का न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु।

प्रत्येक भँवर के बीच जिसने भीतर के मेरु को पकड़ रखा है, वही असली साधक है। चलते हैं राह पर मगर होश रहे 'तुम' कभी नहीं चले। अगर तुम चले तो डगमगा कर गिर जाओगे। दुःख आए तो याद रखना उसकी, जिस पर कभी दुःख नहीं आते। उस पर कुछ नहीं पहुँचता न सुख, न दुःख, न प्रीति, न अप्रीति, न सफलता, न असफलता। सभी द्वंद्व बाहर हैं, भीतर तो मेरु खड़ा है।

कबीर का वचन है—'दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय' संसार दो पाटों की तरह पीस रहा है। शरीर और मन दो पाट हैं, लेकिन इनके बीच मेरु की कील भी है। उसे पकड़ो, उसके सहारे हो जाओ, फिर तुम्हें कोई नहीं पीस पाएगा। वे गेहूँ सदैव अखंड रहते हैं, जो कील का सहारा पकड़ लेते हैं। फिर जन्म हो या मृत्यु, दुःख हो या सुख, तुम प्रत्येक से अछूते रहोगे। तुम मेरु शिखर पर बैठे सब कुछ देखोगे, मगर तुम्हें कुछ भी नहीं छू पाएगा।

महावीर कहते हैं 'चंद्रमा-सा शीतल'। साधक प्रकाशमान तो होता है लेकिन उसका प्रकाश शीतल है। तेजस्विता भले ही सूर्य जैसी हो, लेकिन प्रकृति चंद्रमा जैसी होनी चाहिए। चंद्रमा में उत्तप्तता नहीं है, सिर्फ शीतल प्रकाश है। चंद्रमा का प्रकाश दग्ध नहीं करता, जलाता नहीं है। यह तो प्राणों को तृप्त करता है, घावों को भरता है। ग्रीष्म ऋतु में हम सूरज से तंग आ जाते हैं, लेकिन चंद्रमा का शीतल प्रकाश शांति पहुँचाता है। साधक 'चाँद-सा शीतल हो' जिसके पास जाकर तुम्हें सुकून मिलता हो। तुम उसके पास बैठे तो उसकी तरंगें तुम्हें शांति प्रदान करे। वहाँ कोई उद्वेलन नहीं है, बस, परम शीतलता है। साधु के पास पहुँचकर तुम्हें जीवन को ऊँचाइयाँ देने का ख्याल आने लगेगा। तुम कितने ही पापी क्यों न हो, उसकी शांति, उसकी शीतलता तुम्हें अपनी संभावनाओं को तलाश करने का मार्ग देगी। उसका प्रकाश तुम्हें अनंत आत्मीय आनंद से भर देगा। साधु वह औषधि है जिसके सेवन से सुकून ही मिलता है, जीवन को साधुता ही मिलती है। साधु वह तरुवर है जिसकी छाँह में बैठने मात्र से असीम शांति अनुभव होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधक की ग्यारहवीं दशा है 'मणि-सा कांतिवान....'। मणि-रत्न कितने चित्ताकर्षक होते हैं। हमारी निगाहें मणि को देखकर ठगी-सी रह जाती हैं। उसकी कांति-चमक हमें चकाचौंध कर देती है। भगवान कहते हैं कि साधक भी 'मणि की तरह कांतिवान' हो। उसकी देशना इतनी सम्मोहक हो कि श्रावक चकित रह जाए; उसकी चेतना इतनी मुखर हो कि सब सम्मोहित हो जाएँ। साधु के पास पहुँचते ही हमारे ऊपर अमृत-वर्षा होने लग जाए, उसकी मधुर वाणी धीरे-धीरे प्राणों में घुलने लग जाए। जैसे मणि दूसरे रत्नों की ओर नहीं देखने देती, जैसे मणि देखकर हम दूसरे रत्नों को देखना भूल जाते हैं वैसे ही साधक से अभिभूत होकर संसार की ओर देखना भूल जाएँ। साधक की कांति हमें नूतन दर्शन प्रदान करे। हमारे चिंतन की धारा को नवीन प्रवाह दे।

साधक के लिए अगली कसौटी है—'पृथ्वी के समान सहिष्णु.....' कुछ भी हो जाए, साधक अपनी चेतना में स्थिर रहे पृथ्वी की भाँति। कितने भी तूफान आएँ, आँधी आए, वर्षा हो या आग लग जाए, पृथ्वी निष्कंप, स्थिर, अडोल रहती है। साधु की सहिष्णुता इसी तरह अटूट रहे। दुःख आए या सुख, अपमान हो या सम्मान, निंदा हो या यश मिले साधक डगमगाता नहीं है। वह तटस्थ भाव से, साक्षी-भाव से सब देखते हुए इनसे उपरत रहता है।

साधक सर्प-सा अनियत आश्रयी बने। अगर सहिष्णुता पृथ्वी जैसी हो तो सर्प के समान अनियत आश्रयी भावना। सर्प अपना घर नहीं बनाता। जहाँ जगह मिल गई, विश्राम कर लेता है। घर सुरक्षा का साधन है और साधक को सुरक्षा से क्या मतलब ! जब घर-द्वार छोड़ ही दिया तो जहाँ डेरा डाल दिया वहीं विश्राम। हम इस संसार में परदेसी हैं। यह सतत स्मरण बना रहे कि यहाँ घर नहीं बनाना है। यहाँ तो हम यात्री हैं, यात्री की तरह रहें। आज हैं, कल चले जाना है, फिर चारदीवारी से कैसा राग ! यहाँ तो पड़ाव पर रुकना है, मंजिल कहीं दूर है। हमें तो मंजिल पानी है। सतत गतिमान रहना साधक की तेरहवीं गुण दशा है।

अंतिम गुण है—'आकाश-सा निरावलंब', साधक कोई सहारा न खोजे। आकाश बिना किसी आश्रय के स्थित है। आकाश की कोई नींव नहीं है, खंभे नहीं हैं जिन पर यह टिका हो, बस, निरावलंब। साधक भी ऐसा ही हो स्वयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर आश्रित, बाहरी सहारे जिसके लिए निरर्थक और अनुपयोगी हो गए हैं। आकाश जैसा हो जाए साधक। बादल आकाश को ढक ले, तो भी आकाश है। ऐसे ही साधक पर संसार, समाज कितने भी प्रभाव डाले, निंदा करे, वह स्वयं में स्थित रहे, बाह्य उपकरणों से अविचल।

इन चौदह गुणों से युक्त साधक ही परमपद मोक्ष की डगर पर है। इस पथ पर ऐसा व्यक्ति ही चल पाता है जो रास्ते की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेता है। महावीर के ये संदेश हमें सद्मार्ग पर चलने में सहयोगी बने, और हम इन पर मनन करें, चिंतन करें और आत्मसात करने का पूर्ण प्रयास करें, ऐसी कामना है।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुक्ति का मूल मार्ग : ध्यान

भगवान के आज के सूत्रों में प्रवेश से पूर्व हम एक घटना-प्रसंग से गुजर रहे हैं। मैंने सुना है, घने जंगल में एक फकीर की कुटिया थी। वहाँ ध्यान-साधना कर वह फकीर अनन्त के रहस्यों में खोया हुआ था। उसके अन्तरमन में सदैव एक प्रश्न कौंधता रहता था कि ईश्वर को कहाँ जाकर उपलब्ध करूँ। एक दिन फकीर ने स्वप्न देखा कि उसकी कुटिया से चार मील की दूरी पर नदी बह रही है, नदी पर पुल है और पुल पर बिजली के खम्भे भी लगे हुए हैं। पुल के अन्तिम सिरे पर जो खम्भा है, उसके नीचे अपार धन गड़ा हुआ है। स्वप्न-दर्शन के बाद फकीर की आँख खुल गई। फकीर सोच में पड़ गया, ऐसा स्वप्न तो मैंने जीवन में कभी नहीं देखा। शायद मायाजाल से स्वप्न आ गया होगा, सपनों को आखिर कितना सत्य माना जाए। भोर होते-होते फकीर स्वप्न के बारे में भूल गया। लेकिन रात जब सोया तो अर्द्ध-रात्रि के बाद फिर वही स्वप्न आया। जब उसकी आँख खुली तो सोचा जरूर इस स्वप्न में कुछ रहस्य है तभी तो वापस वही-का-वही स्वप्न आया। वह थोड़ा विचलित हुआ। लेकिन तीसरी रात को जब फिर हू-ब-हू वही स्वप्न आया तो उसे विश्वास हो गया कि स्वप्न मायाजाल नहीं है, इसमें कोई सच्चाई छिपी हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भोर होते ही वह स्वप्न के अनुसार कुटिया से चल दिया और जो-जो सपने में देखा कि चार मील दूरी पर नदी, नदी पर पुल, पुल पर बिजली के खम्भे, सब कुछ मिलता गया। फकीर समझ गया कि स्वप्न बिल्कुल सही है वह पुल के दूसरे सिरे पर खम्भे के पास पहुँचा और धन निकालने की सोचने लगा। लेकिन आश्चर्य, वहाँ पर एक सिपाही खड़ा था। फकीर चाहते हुए भी धन नहीं निकाल पाया और वापस अपनी कुटिया में चला आया कि कल धन निकाल लूँगा। दूसरे दिन फकीर पुनः वहाँ पहुँचा, लेकिन यह क्या आज भी सिपाही खड़ा है। तीसरे दिन भी सिपाही खड़ा था, अब क्या हो? तभी सिपाही ने फकीर को अपने पास बुलाया और पूछा, आप तीन दिन से लगातर यहाँ आ रहे हैं, कुछ देखते हैं और वापस चले जाते हैं, आखिर बात क्या है? फकीर ने कहा, अब तुमसे क्या छिपाना, तीन दिन से एक ही सपना देख रहा हूँ और उसने स्वप्न कह सुनाया और कहा, जहाँ तुम खड़े हो वहीं कहीं धन गड़ा हुआ है। फकीर की बात सुनकर सिपाही जोर से हँस पड़ा और कहने लगा कि फकीर साहब, जैसा स्वप्न आप देख रहे हो, इसी से मिलता-जुलता स्वप्न मैं भी देख रहा हूँ।

उसने बताया मैं तीन दिन से लगातार एक स्वप्न देख रहा हूँ कि जहाँ मैं खड़ा हूँ उससे चार मील दूर एक फकीर की कुटिया है। कुटिया में चारपाई है, वह फकीर उस पर सोया हुआ है और उस चारपाई के नीचे धन पड़ा है। फकीर ने सुना तो वह उल्टे पाँव लौट पड़ा। सोचा, जिस धन की खोज में वह था, वह तो उसकी कुटिया में ही है। उसे बोध हो गया कि जिस धन की तलाश वह बाहर कर रहा है, वह तो उसके भीतर ही है। वह धन उसका परमात्म-धन ही था।

व्यक्ति की मूढ़ता यही है कि वह अपने भीतर छिपे धन को पहचान नहीं पाता और बाहर ही खोजता रहता है। जो परम तत्त्व उसके अंतस में है, जो दिव्य शक्ति उसमें है उसे पहचान नहीं पाता और सारे जहाँ में शक्तियों की तलाश में भटकता रहता है। यही व्यक्ति का अज्ञान है। उस परम तत्त्व की तलाश भले ही दसों दिशाओं में कर ली जाए, पर जब तक अन्तरदिशा में न ढूँढ पाएँ तब तक श्रम बेकार ही गया, समझो। आज भगवान श्री महावीर के जिन विभिन्न सूत्रों पर चर्चा कर रहे हैं, वह महामार्ग है। ऐसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग कि जिस पर वे स्वयं चले थे। उनसे पहले और उनके बाद भी कई परमपुरुष दिव्य मार्ग पर चल चुके।

आज हम जिस महामार्ग की चर्चा करने जा रहे हैं, कि वह अगर व्यक्ति के धर्म और अध्यात्म में न उतर पाया तो मानकर चलें कि उसके सारे कर्म अर्थहीन हो जाएँगे। जीवन भर तक व्यक्ति क्रिया-काण्ड करता रहे पर उसके जीवन में यह राजमार्ग हाथ न लगा तो समझें कि वह केवल गलियारों में भटकता रह गया। जीवन भर चाहे व्रत, तपस्या, आराधना, पूजा-पाठ, प्रार्थना करते रह जाएँ, पर इस महामार्ग पर प्रवेश न किया तो जानिये कि हमारी सारी यात्रा वहीं की वहीं रह गई, कोल्हू के बैल की तरह, जो एक ही घेरे में सुबह से शाम तक घूमता रहता है और कहीं नहीं पहुँचता।

ध्यान जीवन का वह महामार्ग है जो व्यक्ति को संसार-चक्र से मुक्ति दिलाता है। जन्म-जन्मान्तर से पल रही वासना की धारा से मुक्ति दिलाता है और वह इस महामार्ग के मिलने से ही जन्म-जन्मान्तर तक व्यक्ति कभी मुनि के वेश में आया, कभी संन्यासी बना, कभी कुछ और पकड़ा, कभी बाल लम्बे किये, कभी मुण्डित हुआ और कभी पेड़ पर उल्टा लटका, कभी एक पाँव पर खड़ा हुआ, कभी आग की तपिश के बीच रहा, कभी व्रत-उपवास तपस्या की, लेकिन साधना का गुर हाथ न लगा तो भटकता ही रहा। मेरे देखे कितनी भी धर्म-आराधना कर ली जाए, लेकिन आत्म-ज्ञान और आत्म-ध्यान के अभाव में सारी क्रियाएँ राख के ढेर पर की गई लीपापोती भर हो जाती है। जब तक व्यक्ति मूल को न पकड़ पाये तब तक चाहे कितनी पकड़ हो जाए, पर उसकी सारी पकड़ मूल तक न पहुँच पाने के कारण व्यर्थ हो गई। महामार्ग है ध्यान। धर्म और अध्यात्म के मार्ग के साथ ध्यान को न जोड़ा गया तो वे सारे मार्ग बिना एक का प्रयोग किये शून्य लगाने के समान है। आत्म-बोध, आत्म-ज्ञान, आत्म-दर्शन और आत्म-चिंतन के अभाव में उसकी सारी क्रियाएँ व्यर्थ हैं।

विश्व में विभिन्न प्रकार के धर्म प्रचलित हैं। उनमें नानाविध विभिन्नताएँ भी हैं पर ध्यान वह प्रक्रिया है जिसे सभी धर्मों ने समान रूप से स्वीकार किया है। योगी आनन्दघन कहते हैं 'आतम ज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्यलिंगी रे।' बाहर से कपड़े बदलकर साधु बनने से, मुण्ड मुण्डाकर सन्त बन जाने से और भभूत रमाकर संन्यासी हो जाने से सिद्ध नहीं बना जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सकता। तुम बार-बार संसार में आते हो, धर्म में भी प्रवृत्त होते हो, लेकिन आत्म-बोध की चाबी के बिना 'बैरंग' वापस चले जाते हो। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—'ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुनः' ज्ञान रूपी अग्नि जीवन में प्रज्वलित हो जाए तो उसके कर्म रूपी दोष भस्म हो जाते हैं। प्रश्न है वह ज्ञान कौन-सा ?

वह ज्ञान नहीं है जिसका हमें अहं हो रहा है। वह भी सम्यक् ज्ञान नहीं है जिसके बल पर हम दूसरों को उपदेश देते हैं। सच्चा ज्ञान तो वह ज्ञान है जिसे हम आत्म-ज्ञान कहते हैं।

ध्यान वास्तव में शरीर, मन-विचार और लेश्याओं के पार स्वयं तक, अपनी आत्मा तक पहुँचने का मार्ग है। विश्व के अध्यात्म जगत् की आत्मा भारत है तो भारत की आत्मा ध्यान है। अगर ध्यानयोग को भारतीय अध्यात्म जगत से अलग कर दिया गया तो पीछे बचेगा क्या? आज भगवान जो सूत्र दे रहे हैं, वह उस मार्ग को और अधिक तेजस्विता प्रदान कर रहा है। भगवान का आज का सूत्र है—

सीसं जहा सरीस्स, जहा मूलं दुमस्स य।
सव्वस्स साधुधम्मस्स, तहा झाणं विधीयते।।

जैसे शरीर में सिर महत्त्वूपर्ण है और वृक्ष में उसकी जड़ें महत्त्वपूर्ण हैं, वैसे ही साधु के समस्त साधना-मार्गों/धर्मों में ध्यान महत्त्वपूर्ण/मूल है।

महावीर का यह महत्त्वूपर्ण सूत्र है। एक ऐसे मार्ग को प्रशस्त करता सूत्र जिसे महावीर ने पल-पल अपने जीवन में जीया है। यह सूत्र उस मार्ग का प्ररूपण कर रहा है जिसके बलबूते पर महावीर ने कैवल्य और मुक्ति को उपलब्ध किया था। सच में ध्यान ही तो हर अरिहंत और बुद्ध का आधार रहा है।

सूत्र का पहला चरण है जैसे शरीर में सिर मुख्य है। अद्भुत उपमा दी है महावीर ने। शरीर में से सिर और वृक्ष में से उसकी जड़ें निकाल दो, तो दोनों ही अर्थहीन हो जाएँगे। आप एक ऐसे शरीर की कल्पना करें जिसमें सारे अंग हों, पर मस्तिष्क न हो। क्या उस जीवन का कुछ विकास हो पाएगा ? मस्तिष्क तो आदमी का मूल है जैसे पेड़ में उसकी जड़ें। जड़ें अगर विकृत हो गयी हैं तो समझो पूरा पेड़ ही विकृत हो रहा है। आदमी की जड़ें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मस्तिष्क में होती हैं और वृक्ष की जड़ें जमीन में। आदमी एक उल्टा पेड़ है या यों कहें पेड़ एक उल्टा आदमी है।

महावीर कहते हैं—शरीर का मूल सिर और वृक्ष का मूल जड़ें। जिसकी जड़ें कमजोर है वह वृक्ष कमजोर। मैंने सुना है, एक आदमी रेगिस्तान से गुजर रहा था। जोर की भूख-प्यास लगी। पास में कुछ न था खाने-पीने के लिए। एक पेड़ के पास पहुँचा और खाने के लिए कुछ फल तोड़े। देखा, फलों में कोई रोग लगा था, उसने पत्तों को देखा तो वे भी रुग्ण। डालियों को देखा तो उनमें भी वही रोग और कीड़े लगे थे। और तो और पेड़ का तना भी रोग से घिरा था। अन्ततः उसने पेड़ की जड़ों को खोद कर देखा तो जड़ों में भी रोग था। उसे समझते देर न लगी कि जिसकी जड़ें विकृत हैं उसके फल तो विकृत होंगे ही। सावधान ! फलों के रोग मिटाने के लिए भी दवा फलों पर नहीं जड़ों पर छिड़कनी होती है। जानते हो वृक्ष जितना ऊँचा होता है, उसकी जड़ें उतनी ही गहरी होती हैं। पेड़ कभी भी फलों, पत्तों और डालियों पर नहीं टिकता, वह तो जड़ों पर ही टिकता है। इसलिए महावीर ने ये दो उदाहरण दिये—शरीर का आधार सिर और वृक्ष का उसकी जड़ें।

महावीर कहते हैं—ऐसे ही साधना का आधार, चित्त की शांति और शुद्धि का आधार ध्यान है। चाहे गृह जीवन की व्यवस्था हो या साधक की साधना—बिना ध्यान सब सून। अगर तुम्हारा भोजन सही नहीं बना, तो इसका कारण है तुमने ध्यान से भोजन नहीं बनाया। अगर तुम परीक्षा में असफल हुए, तो इसका कारण है तुमने ध्यान से पढ़ाई न की। अगर वाहन चलाते हुए दुर्घटना हो गयी तो उसका कारण तुमने वाहन ध्यान से नहीं चलाया होगा। और तो और, चलते हुए अगर ठोकर भी लग जाये तो समझो तुम ध्यान से नहीं चल रहे थे। ध्यान तो सर्वत्र आवश्यक है संसार में भी और साधना में भी।

साधना के जितने भी मार्ग हैं उनमें ध्यान मुख्य है। आत्म-साधना रत व्यक्ति पल-पल ध्यान में जिये। तीर्थंकरों की जितनी भी प्रतिमाएँ हैं वे ध्यानस्थ हैं। ये प्रतिमाएँ साधक के लिए प्रेरणा-सूत्र हैं। व्यक्ति जब भी सिद्ध-बुद्ध-अरिहंत होता है, इसी ध्यान के मार्ग से ही होता है। मन की शांति, तनाव से मुक्ति और आत्मशुद्धि का मार्ग है ध्यान।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिस प्रकार वृक्ष के लिए जड़ महत्त्वपूर्ण है, मनुष्य के लिए मस्तिष्क आवश्यक है, उसी तरह धर्म के, साधना के जो मार्ग हैं उनमें ध्यान का मार्ग प्रमुख है। जन्मों-जन्मों में व्यक्ति जब प्रबल पुण्य का उदय पाता है तब कहीं उसके जीवन में ध्यान और साधना का मार्ग प्रशस्त होता है। जिसके जीवन में ध्यान का मार्ग नहीं है फिर वह चाहे जितनी साधना करे, सब अर्थहीन है।

ध्यान वह महामार्ग है जिस पर चलने से मंजिल निरन्तर करीब आती जाती है। हमें भीतर की ओर जाना है, बाहर तो बहुत भटक लिये, अब अपने अन्दर उसकी खोज करनी है जो हमारा प्राप्य है, हमारा अन्तिम ध्येय है।

मात्र मक्का, काबा, काशी जाने से क्या होगा? अगर अन्तर-विशोधन न हुआ तो तीर्थ-यात्रा भी परिणाम न दे पाएगी। 'मक्का गया, हज किया, बन के आया हाजी, आजमगढ़ में जब से लौटा फिर पाजी का पाजी'। मूल में कोई रूपांतरण घटित नहीं हो रहा है। धर्म के नाम पर केवल बाहर के क्रियाकांड सम्पादित किये जा रहे हैं पर धर्म का मूल मार्ग तो हाथ से खिसक ही गया है। मन्दिर में जाकर पूजा कर ली जाती है, पर मन पवित्र नहीं हो पाता और स्थानक में जाकर सामायिक कर ली जाती है पर स्वभाव में समता नहीं उतर पाती। ध्यान सामायिक का विशुद्ध रूप है जहाँ व्यक्ति बाहर से ही नहीं भीतर से तटस्थ और साक्षी होता है। तुम नित्य-प्रति सामायिक कर रहे हो, लेकिन इसके रहस्य से अभी अपरिचित हो। इसे अभी तक चेतना की सामायिक नहीं बना पाए हो, तभी तो यह अप्रभावी है। तुम सामायिक में नहीं उतर पाए तभी तो यह क्रोध, यह गलत व्यवहार, यह वाणी का असंयम अभी तक जारी है। मन्दिर में तो गए, पर परमात्मा को नहीं देख पाए। वहाँ भी पद-पैसा और प्रतिष्ठा में उलझकर रह गए। अगर तुम वहाँ आराधना कर पाते तो कभी कम नहीं तौलते, कभी रिश्वत न लेते, किसी पर बुरी नजर नहीं डालते। यह बाहर और भीतर का भेद ही इसीलिए है कि आत्म-ज्ञान का प्रकाश साकार न हो पाया। और जब तक अन्तरलोक में प्रवेश नहीं होता तब तक तुम चाहे दसों दिशाओं में खोज आओ, ईश्वर से मिलन नहीं होगा। सारे वेदों के ज्ञाता हो जाओ, लेकिन अन्तर के वेद को न पढ़ा तो धर्म और अध्यात्म के रहस्यों से अनभिज्ञ रह जाओगे। हम चारों वेदों का परायण करते हैं। पर एक पाँचवाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेद और आवश्यक है, और वह है अन्तरवेद। यानि भीतर का बोध। जिसे पढ़े बिना चारों वेद शायद परिणाम न दे पाएँ। ध्यान इसी वेद को पढ़ने का प्रयास है। जब व्यक्ति के हाथ में ध्यान का मंत्र आ जाता है तब वह तनाव, अशान्ति और अवसाद से मुक्त हो जाता है। इक्कीसवीं सदी के मध्य तक सारी दवाइयाँ अपना असर खो चुकेंगी तब ध्यान एकमात्र कारगर दवा सिद्ध होगा। आज मानव ने विकास की ढेरों सीढ़ियाँ चढ़ी हैं। वह चन्द्रलोक की सैर करके आ गया है। चन्द्रमा तक जाने में उसने अरबों डॉलर खर्च कर दिये, पर वह वहाँ से क्या लेकर आया? कुछ मिट्टी के, कुछ पत्थर के ढेले। अरे जितना परिश्रम चन्द्रमा पर जाने के लिए किया, उतना महावीर और बुद्ध की अन्तरयात्रा के लिए किया होता तो वापसी में उसके पास ऐसे हीरे होते, जिन्हें पाकर वह धन्यभागी हो जाता।

मनुष्य अपने अन्तरलोक में न उतर पाने के कारण जन्मों-जन्मों से भटक रहा है और उसे कुछ नहीं मिल पा रहा। बहुत घूम लिए बाहर, बहुत जी लिये बाहर, बहुत देख-सुन लिया बाहर, बाहर का बहुत स्वाद भी ले लिया, अब तो भीतर मुड़ो, सुनो वहाँ की झंकार को, देखो भीतर के जगत को, अब तो जीओ भीतर की चेतना में, अब तो सूँघो भीतर की सुवास को, अब तो चखो भीतर के स्वाद को। 'रस गगन गुफा में अजर झरै, बिन बाजा झंकार उठे।' अन्तरलोक में जरूर ऐसा स्वाद, सुगंध और माधुर्य है कि महावीर और बुद्ध को राजमहल में न मिल पाया और जंगल में मिल गया। जरूर भीतर का ऐसा वैभव रहा होगा, जो राजमहल में नहीं जंगल में मिला। हमने तो कभी इसका स्वाद ही नहीं चखा है, फिर हम उसके रस को क्या जाने ? अमृत उसके लिए है जो अमृत को पहचानता है।

ध्यान के लिए जब आप आँखें बन्द करेंगे तो सबसे पहले घना अंधकार पाएँगे। इस अंधकार से डरकर आँखे खोल नहीं लेना है। आप जानते हैं न कि अँधेरे को हटाने के लिए प्रकाश की एक किरण ही पर्याप्त होती है। जितनी अँधेरी रात होती है, उतनी ही सुहानी सुबह होती है। जो अँधेरे से गुजरता है वही प्रकाश की किरणों का अधिकारी होता है। जैसे ही भीतर प्रवेश करोगे पहला तल अँधकार का, दूसरा तल श्वास का, तीसरा तल मन का, चौथा तल चित्त का, पाँचवाँ तल हृदय का, छठा तल प्राण का, सातवाँ तल आत्म-मण्डल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का और आठवाँ तल स्वयं की चेतना का। अपने शरीर में प्रवेश करके जब व्यक्ति इन तलों को पार करता है, तब उसे आत्म-ज्ञान की उपलब्धि होती है। यही आत्म-ध्यान है, यही भीतर की सुवास, सुगन्ध और सौन्दर्य है। जिसे इसकी झलक मिल गई वह बाहर नहीं जाएगा, वह तो आत्म-रमण करेगा। भगवान कहते हैं 'अप्पा अप्पम्मि रओ।' फिर उस साधक की आत्मा स्वयं में रमण करती है।

कहते हैं कि जब महावीर कहीं पास से निकल जाते थे, तो अनुपम सुगन्ध का वातावरण छोड़ जाते थे। उनकी देह से दिव्य गन्ध फैलती थी। कहाँ से आती थी? महावीर तो स्नान भी नहीं करते थे, वे तो सदैव ध्यान-मुद्रा में आत्म-लीन रहते थे। उनके शरीर में झरती सुवास उनकी साधना का अतिशय था। जिसे भीतर की सुवास मिल गई वह तो जहाँ विचरण करेगा, सुगन्ध ही बिखेरेगा। भीतर की शान्ति, भीतर का आनन्द, भीतर का पुलक भाव और भीतर की चैतन्य ज्योति जिसे प्राप्त हो गई, वह किसी और लोक का प्राण हो जाता है। साधक संसार में भी संसार से उपरत ही रहता है।

हिमालय की कन्दराओं में रहने वाले ऋषि-मुनियों के लिए ही ध्यान नहीं है, अपितु बाजार, दुकान, मकान, व्यवसाय और परिवार में रहने वालों के लिए भी है। अगर वह ध्यान का टॉनिक रोज ले लेता है तो दिन सार्थक और सफल हो जाता है। ध्यान वह दवा है जो सुबह ले ली जाए तो दिन शान्तिपूर्वक, तनाव व चिन्तामुक्त व्यतीत होता है और शाम को ध्यान कर लिया जाए तो रात निर्विघ्न पूर्ण होती है और भोर सुहानी हो जाती है। ध्यान की छोटी-सी विधि हमारे सुबह और शाम को आसान बना देती है। शरीर की व्याधियों को मिटाने के लिए मेडिसिन है और मन की व्याधियों को हटाने के लिए मेडिटेशन है। दवाएँ हमारी नाड़ियों को सुषुप्त कर देती है और ध्यान व्यक्ति को सुषुप्ति में से निकालकर जाग्रत बनाता है, हमारी संवेदनशीलता को बढ़ाता है। जो व्यक्ति प्रतिदिन ध्यान करता है वह जीवन को बहुत त्वरा से जीता है। सुबह ध्यान करने का अर्थ है स्वयं के आँगन में एक बुहारी लगा लेना। जैसे महिलाएँ सुबह-सुबह घर में झाड़ू लगाकर घर को स्वच्छ बनाती हैं, वैसे ही ध्यान की बुहारी चित्त की, संस्कारों की, भीतर की मलिनता को हटाकर स्वस्थता प्रदान करती है। दुनिया की तमाम दवाएँ निष्फल हो सकती हैं, पर ध्यान की औषधि अत्यन्त प्रभावी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विश्व के इतिहास में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन सभी ने ध्यान के द्वारा ही शुद्धि और मुक्ति पाई है। अगर साधना-मार्ग से ध्यान को निकाल दिया जाए तो शेष मार्ग प्राणवंत न रह पाएँगे। एक मुक्ति वह है जो मृत्यु से मिलती है और दूसरी मुक्ति वह है जो ध्यान के द्वारा जीते जी प्राप्त की जा सकती है। मृत्यु से प्राप्त हुई मुक्ति को किसने देखा-भोगा है, शायद उसका अभी सौभाग्य न हो। लेकिन ध्यान से प्राप्त मुक्ति जीवन को ताजगी से भर देती है। हर पल आनन्द, हर पल मुक्ति, हर पल चैतन्य-धारा भीतर सतत प्रवाहित होती है। जिसने ध्यान का मार्ग पा लिया, उसने सब कुछ पा लिया। यह राजमार्ग है अन्तस में उतरने का, चलने का। ध्यान वह जीवित धर्म है जो तत्काल प्रभाव देता है। यह बात कुछ जँचती नहीं कि सामायिक आज करो और शान्ति अगले जन्म में मिले, पूजा आज करो और परमात्मा अगले जन्म में आएँ। उस गोली को कौन खाएगा जो ली तो आज जाए और बुखार उतरे अगले वर्ष।

सामायिक तो ऐसी हो कि सुबह सामायिक की तो दिन भर समता अपने-आप उतर आए। ध्यान की आब-ओ-हवा से भरी सामयिक। चित्त की वृत्तियों पर हमारी क्रियाओं का प्रभाव न जा सके तो क्रियाओं की निरन्तरता निरर्थक है। अशुभ का तो असर हो और शुभ प्रवेश न कर सके, तो क्रियाओं को करते रहने का क्या अर्थ है? मैं बताना चाहता हूँ कि हमने अभी तक नरक के लिए बहुत श्रम कर लिया अब यह श्रम निरर्थक नहीं, बल्कि मुक्ति के लिए सार्थक बनाना है। जितना श्रम अभी तक कर चुके हो, उससे एक-चौथाई श्रम में मुक्ति का मार्ग, स्वर्ग की व्यवस्था तलाश सकते हो। मुक्ति के लिए ध्यान का राजमार्ग न मिल पाने के कारण वह गलियारों में भटककर रह गया। तुम कब तक स्वर्ग और नरक के नक्शों में भटकते रहोगे। अन्ततः तो मुक्त होना ही है। मनुष्य के सामने अज्ञान, अविद्या और अन्धविश्वास की ऐसी दीवार खड़ी कर दी गई कि वह दूसरी ओर देख ही नहीं पा रहा। अन्धविश्वासों के चलते ऐसा लगता है मानो शान्ति और मुक्ति के मार्ग हमारे हाथ से छूट चुके हैं।

मनुष्य जीवित मुक्ति का आनन्द ले सकता है, अपने भीतर निर्लिप्त जीवन को साकार कर सकता है अगर वह मुक्ति मार्ग की ओर प्रस्थान करे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो। हम जिस ध्यान की चर्चा कर रहे हैं, वह भीतर का मार्ग है। यहाँ-वहाँ, इधर-उधर, ऊपर-नीचे सब ओर गए पर भीतर न गए इसलिए वह न मिला जो हमें मिलना चाहिए। स्वयं में प्रवेश न कर पाने के कारण कस्तूरी-मृग की तरह भटक रहे हैं। सुगन्ध तो हमारे भीतर है, वह बाहर ढूँढ़ने से नहीं मिलेगी। ध्यान तो वह मार्ग है, जो जीते जी स्वर्ग का आनन्द दिलाता है, जीते जी प्रेम, आनन्द और शान्ति का स्वाद चखाता है, करुणा और दया में अवगाहन कराता है। पर इनके लिए आना भीतर ही पड़ेगा। जो जहाँ खोया, उसे वहीं तो ढूँढ़ना होगा।

सूफी फकीरों में एक महिला फकीर हुई हैं—राबिया वसी। एक दिन वह साँझ ढले अपनी कुटिया के बाहर कुछ ढूँढ़ रही थीं। उधर से कुछ सूफी फकीर गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि राबिया काफी देर से कुछ ढूँढ़ रही है। फकीरों ने राबिया से पूछा, क्या ढूँढ रही हो ? लेकिन राबिया ने उनसे पूछा कि वे कहाँ जा रहे हैं ? खुदा की तलाश में, फकीरों ने उत्तर दिया। 'पर तुम्हारा क्या खो गया है, तुम क्या ढूँढ़ रही हो' उन्होंने पुनः पूछा। राबिया ने कहा, फकीरो, मेरी सुई खो गई है, वही यहाँ तलाश कर रही हूँ। फकीरों ने सोचा राबिया बूढ़ी हो गई है, चलो हम ढूँढ़ देते हैं। सारे फकीर मिलकर सुई ढूँढ़ने लगे। आधा घण्टे तक मशक्कत करने के बाद भी जब सुई न मिली तो एक फकीर ने पूछा, राबिया जरा बताओ तो तुम्हारी सुई कहाँ खोई थी ? राबिया ने कहा, सुई तो कुटिया में खोई थी। मतलब हमें बेवकूफ बनाया जा रहा है, हमने तो समझा था कि राबिया तुम शास्त्रज्ञ हो, विद्वान हो, आत्मज्ञ हो, लगता है राबिया तुम बुढ़ा गई हो, अरे जो सुई कुटिया में खोई है, वह बाहर तलाशने से कैसे मिलेगी ? फकीर बोला।

कुटिया में बहुत अँधेरा है, बाहर उजाला है तो मैंने सोचा बाहर ही खोज लूँ। राबिया ने उत्तर दिया। फकीरों ने कहा, अरे, तेरी बुद्धि नष्ट हो गई है, चाहे भीतर अँधेरा हो या उजाला, लेकिन जो चीज भीतर खोई है उसकी तलाश भीतर ही करनी होगी। राबिया ने कहा, मैं तुमसे यही कहना चाहती हूँ जो चीज भीतर है वह बाहर खोजने से नहीं मिलेगी।

जब तुम ध्यान करोगे तत्काल उसका परिणाम मिलेगा। अभी ध्यान किया अभी शान्ति मिली। ध्यान का परिणाम एकदम नकद है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान कैसे करें ? यह तो जब शिविर होंगे तब बताया ही जाएगा लेकिन सीधी सरल भाषा में ध्यान का पहला चरण है बाहर से भीतर मुड़ें। दूसरा मार्ग भीतर के विकारों को समाप्त करो। तीसरा मार्ग है अपनी भागती हुई ऊर्जा को विश्राम दो। ध्यान की सबसे सरल विधियाँ हैं-

नासाग्र पर दृष्टि का केन्द्रीकरण—अर्धोन्मिलित नेत्रों से नासिका के अग्र भाग को इतनी त्वरा से देखना कि केवल नासाग्र ही रह जाय। तीन मिनिट के गहन केन्द्रीकरण के बाद श्वासों का आवागमन आंखें बंद करके देखें। किसी भी प्रकार का विचार नहीं। बस देखते रहें.....देखते रहें.....पन्द्रह मिनिट तक। इसके बाद अपने आज्ञा-चक्र पर केन्द्रित हो जाएँ। प्रारंभ में कालिमा दिखाई देगी लेकिन जैसे-जैसे एकाग्रता बढ़ेगी, कालिमा दूर होती जाएगी और अन्य-अन्य रंग उभरते आएंगे। एक दिक्कत आएगी कि विचारों का तारतम्य शुरू हो जाएगा। अब चौथे चरण में इन विचारों के प्रति साक्षी हो जाना है। इन उठने वाले विचारों का तटस्थ होकर निरीक्षण करना है, उसमें शामिल नहीं होना है, बस देखना भर है। कोई क्रिया-प्रतिक्रिया भी नहीं करना, केवल साक्षी हो जाना। धीरे-धीरे विचारों का आना-जाना बंद हो जाएगा और यही है ध्यान की अवस्था। निर्विचार हो जाना ही ध्यान है। ध्यान किसी भी समय, किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। सारा घर सोया है तुम भी लेटे हो और ध्यान कर सकते हो। ध्यान और नींद दोनों में आंखें बंद रहती हैं, पर नींद में चेतना सोई रहती है और ध्यान में चेतना जाग्रत रहती है। बहुत थोड़ा-सा फर्क है, लेकिन गहरा अंतर है चेतना की अवस्था में। दुनिया सोवे, जोगी पोवे।

अन्तिम चरण है अन्तरलीनता। जहाँ तुम्हारे भीतर साधना प्रभावी हो गई अब कोई प्रयास नहीं है। सहज आत्मबोध।

अब हम ध्यान के परिणामों की चर्चा करेंगे। ध्यान का सबसे पहला परिणाम है सच्चे स्वरूप का बोध। अभी तक तुम्हें केवल शरीर का ही बोध है। किसी ने तुम्हें नाम दे दिया, तुम उसी नाम को अपना समझने लगते हो। तुम मेरा नाम जानते हो और मैं तुम्हारा नाम। पर इससे हासिल क्या होगा ? कितना अच्छा हो मैं 'मुझे' जानूँ और तुम 'तुम्हें' जानो। एकात्म-स्वरूप का बोध हो। ध्यान का कार्य है व्यक्ति अपने मौलिक स्वरूप को पहचाने-अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्म-स्वरूप को जाने। क्या मैं नाम हूँ, क्या मैं रूप हूँ, रस हूँ, गंध हूँ, स्पर्श हूँ, स्वाद हूँ, मैं कौन हूँ ? यह बोध होता है। ध्यान का कार्य एकाकीपन का बोध करवाना है। मैं नितांत अकेला हूँ।

ध्यान का एक अन्य परिणाम है जीवन में महामौन। साधक बोलते हुए भी मौन होता है। वह मन से शांत-अविचल रहता है। उसका मन उज्ज्वल और निर्मल होता है। अभी तो मौन रहने की प्रतिज्ञा करनी होती है, प्रयास करना पड़ता है, लेकिन ध्यानी के मौन घटित होता है। जब वह अपने आत्म-ध्यान में डूबता है तब तो 'इक साधै सब सधै' चरितार्थ होता है। जिसके लिए वेद कहते हैं 'तत्त्वमसि'—अरे तू उसकी कहाँ तलाश कर रहा है, वह ईश्वर, वह दिव्य परम चेतना तो हमारे भीतर है। अकारण ही परम मौन उतरता है और पनपता है अकारण ही प्रेम। हां, यह भी ध्यान का परिणाम है कि आपके अंदर करुणा, दया और प्रेम अनायास आ जाता है। आपको पता भी नहीं चलता और आप करुणावंत हो जाते हैं, सारे जहाँ पर स्नेह-वर्षण करते हैं। अभी तो सकारण दया करते हैं, दिखावटी प्रेम-प्रदर्शन भी करते हैं, लेकिन ध्यान के परिणाम में यह स्वयमेव प्रतिफलित होता है।

जब वह ध्यान के फलस्वरूप उस परम सत्ता को उपलब्ध कर लेता है, तो वह पत्तों से बातें करता है, पत्थरों से संलाप करता है। उसका प्रेम अकारण प्रकट होता है। हाँ, ध्यान हमारे जीवन में ऐसा सब कुछ कर सकता है।

ध्यान-साधना से जुड़ा भगवान का दूसरा सूत्र है—

थिरकय-जोगाणं पुण, मुणीण झाणे सुनिच्चल-मणाणं।
गामम्मि जणाइण्णे, सुण्णे रण्णे व ण विसेसो।।

जिन्होंने अपने योग अर्थात् मन-वचन-काय को स्थिर कर लिया है और जिनका ध्यान में चित्त पूरी तरह निश्चल हो गया है, उन मुनियों के ध्यान के लिए घनी आबादी के ग्राम अथवा शून्य अरण्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

भगवान का यह सूत्र काफी उपयोगी है, अब तक हमारी यह मानसिकता बनी रही है कि ध्यान करने के लिए आदमी को गहन जंगलों में ही जाना होता है, वनवास लेना होता है या हिमालय की गुफाओं में जाकर साधना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करनी पड़ती है। इस विषय में भगवान का यह सूत्र क्रांतिकारी है। महावीर के अनुसार जिस साधक ने ध्यान की पूर्व भूमिका तैयार कर ली है, वह जंगल में हो या जयपुर में, भले मुम्बई की अट्टालिकाओं में भी क्यों न हो, वह वहाँ भी ध्यान कर सकता है क्योंकि वह योग से ऊपर उठ जाता है।

भगवान कहते हैं कि जिन्होंने मन, वचन और काया के योग का अयोग कर लिया है। इसे समझें, चेतना में प्रवेश करने के लिए जो प्रमुख बाधक तत्त्व हैं—वे शरीर, मन और वचन या विचार ही हैं। जब भी व्यक्ति साधना के लिए कदम उठाता है, ध्यान की बैठक लगाता है तो पहला ही बाधक बनता है उसका अपना शरीर। आराम में जीने का आदी और विषय-सुखों को भोगने का अभ्यासी यह शरीर साधक की साधना में तब तक मददगार नहीं होगा जब तक कि इसे साध न लिया जाए। जैसे सधी हुई वीणा ही संगीत पैदा करने में समर्थ होती है, वैसे ही सधा हुआ शरीर ध्यान-योग में मददगार बन सकता है। शरीर की केवल बाह्य-शुद्धि आवश्यक नहीं है, अन्तर-शुद्धि कहीं ज्यादा जरूरी है। आदमी पाँच-दस मिनट तो सीधी कमर से ध्यान में बैठ जाएगा उसके बाद कमर में दर्द उठ आता है क्योंकि अब तक हम या तो सहारा लेकर बैठने के आदी रहे या फिर झुककर। भगवान कहते हैं कि साधक शरीर को साधे, उसका गोपन करे, उसे स्थिर करे, ताकि वह साधना में सहायक बन सके। और दूसरी बात वे कह रहे हैं मन को स्थिर करें। बात महत्त्वपूर्ण है। मन को स्थित और स्थिर करने के अभाव में भले ही वर्षों ध्यान की बैठकें लगती रहें, लेकिन कोई परिणाम हाथ नहीं लगेगा। ठीक वैसे ही जैसे गंदे झाड़ू से कोई आंगन साफ करे।

तीसरी बात भगवान कहते हैं वचन और विचार को स्थिर करने की। वर्षों तक ध्यान करने के बाद आप साधकों की यह शिकायत रहती है कि अभी भी मन या शरीर साधना के लिए अनुकूल नहीं हो पा रहा है। यर्थाथतः संसार और उसके विषय-भोगों की संस्कार-धारा जन्म-जन्मान्तर से हमारे साथ चली आ रही है और उन्होंने हमारे चित्त-चेतना में इतनी गहरी जड़ें जमा दी हैं कि जल्दी उनको उखाड़ पाना संभव नहीं दिखता। साधना के संस्कार जगे हैं साल-दो साल से और संसार और वासना के संस्कार हैं जन्म-जन्मान्तर से। इसलिए थोड़ा समय लगेगा ही। यह अनन्त का मार्ग है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और इस मार्ग पर चलने के लिए अनन्त धैर्य की आवश्यकता है। जब व्यक्ति 'सर्वतोभावेन' साधना के लिए स्वयं को समर्पित करेगा तो स्वतः ही शरीर, मन और विचारों पर अपना अंकुश लगा सकेगा। आचार्य हरिभद्र ने योग-बिन्दु में योग के अयोग को योग माना है। आखिर यह योग क्या है? मन-वचन-काया ही योग है। आदमी जन्म-जन्मांतर से इन्हीं से जुड़ा है, इन्हीं में बहा है।

हमारे पास कई साधक आते हैं कहते हैं हमें साधना से यह शक्ति चाहिए, वह शक्ति चाहिए। क्या हम अपनी शक्तियों का जागरण कर सकते हैं? क्या साधना में जमीन से ऊपर उठ सकते हैं? किसी के मन की बात समझ सकते हैं? सब कुछ संभव है। ये मत समझो कि साधना कुछ परिणाम नहीं देती है। साधना के बड़े गहरे परिणाम होते हैं और शायद उन लोगों को कभी न मिले जो बार-बार परिणामों को ढूंढने का प्रयास करते हैं और अभी तो साधना शुरू ही कहाँ हुई है। केवल पद्मासन लगाकर आँखें बंद करने से ध्यान की पूर्णता थोड़ी ही मिल जाएगी। पहले मन-वचन-काया को स्थिर करो, उनको साधो ताकि वे साधनानुकूल बनें। तुम लम्बी देर तक स्वयं को साधना के लिए समर्पित करो ताकि एकनिष्ठा के साथ अपनी भीतर की प्रयोगशाला में जीवन-विज्ञान के प्रयोग कर सको। जैसे एक वैज्ञानिक किसी विशिष्ट वस्तु का आविष्कार करने के लिए पुनः-पुनः भाँति-भाँति के तत्त्वों पर प्रयोग करता है और तब तक उसके प्रयोग जारी रहते हैं जब तक परिणाम न मिल जाए। ध्यान भी तो जीवन-विज्ञान का एक प्रयोग ही है। यहाँ सारे प्रयोग स्वयं पर, स्वयं की चेतना पर किये जाते हैं।

मन, वचन, काया को स्थिर करने के बाद ध्यान में अपने चित्त को निश्चल करें। साधना के लिए ऐसा करना आवश्यक है। जिसका चित चलायमान है वह भला ध्यान में इधर-उधर भटकने के अलावा क्या कर पायेगा। जिसका चित्त शांत है, वह तो ध्यान में जब भी बैठेगा सहजतया भीतर प्रवेश कर जायेगा। अंशात चित्त ध्यान में भी इधर-उधर की उधेड़बुन के अलावा कुछ न कर पायेगा। जो साधक मन, वचन और काया को स्थिर कर ध्यान में चित्त को निश्चल कर चुका है, उस साधक के लिए नगर या जंगल में काई फर्क नहीं रह जाता। जो तटस्थ है, जिसका साक्षित्व जागृत हो चुका है, जिसने बोध का दीप जला लिया है, वह जंगल में है या महल में उसे कहाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फर्क पड़ता है। भरत और जनक जैसे लोग राजमहलों में रहकर भी साधना-निष्ठ जीवन जी लेते हैं और विश्वामित्र और पराशर जैसे ऋषि जंगल में भी छोटे से निमित्त से परास्त हो जाते हैं। स्थान गौण है, वेश और देश भी गौण हैं, मुख्य है हमारी अपनी ही चित्त और चेतना की वृत्ति। आत्म-साधक चाहे संसार में रहे अथवा हिमालय की गुफाओं में, उसके लिए दोनों ही समान हैं। वह तो विषय-वासना के निमित्तों के बीच रहकर भी कीचड़ में कमल की तरह पूर्णतया निर्लिप्त रहता है। यह अन्तर्निर्लिप्तता का ही प्रभाव है कि जिसके चलते सिंह की गुफा में और साँप की बांबी के किनारे खड़े होकर साधना करने से भी ज्यादा महान महलों में कोशा गणिका के पास प्रवास करने वाले स्थूलिभद्र कहलाते हैं। यह सूत्र ऐसे साधकों के लिए ही है। जो किसी भी निमित्त को पाकर अप्रभावित रहते हैं। भगवान कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति महलों में रहे या जंगल में समान ही रहता है। इसी बिन्दु से जुड़े भगवान के एक और सूत्र पर हम चर्चा करते हैं। भगवान कहते हैं—

जह चिरसंचिय मिंधण-मनलो पवण सहिओ दुयं दहइ।
तह कम्मेंधण ममियं, खणेण झाणानलो डहई।।

जैसे चिर संचित ईंधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला डालती है, वैसे ही ध्यान रूपी अग्नि अपरिमित कर्म-ईंधन को क्षण भर में भस्म कर डालती है।

भगवान कहते हैं कि चिरसंचित ईंधन को जैसे वायु से उद्दीप्त आग जला डालती है। उपमा साधक के लिए काम की है क्योंकि साधक प्रायः यह सोचा करता है मैंने इतने लम्बे काल तक कर्म के बन्धन किये हैं क्या एक जीवन की साधना से इनसे मुक्ति मिल जाएगी। उन साधकों के लिए यह उपमा काम की है। जैसे लकड़ियों के ढेर को आग की एक चिनगारी राख में तब्दील करने की क्षमता रखती है, वैसे ही जो साधक ध्यान रूपी अग्नि को प्रज्वलित कर चुका है, उसके अपरिमित कर्म-ईंधन क्षण भर में जल कर नष्ट हो जाते हैं। पता है महावीर के पूर्व जन्मों के कितने कर्म बँधे हुए होंगे ? अनंत जन्मों के। लेकिन जब ध्यान की अग्नि जली, एक ही जन्म में सारे कर्म जल गए, नष्ट हो गए। गीता कहती है जिसने ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित कर ली, उसके सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं। गीता जिसे ज्ञान कहती है महावीर उसे ध्यान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं। ज्ञान और ध्यान में ज्यादा फर्क नहीं है। दोनों ही प्रज्ञा और बोध से जुड़े हैं।

एक बात हम भलीभाँति समझ लें कि ध्यान कोई रूखा या कठिन मार्ग नहीं है। दुनिया में धर्म और अध्यात्म के जितने भी आयाम हैं, ध्यान उनमें सबसे सहज-सरल है। किसी तरह का कोई प्रयास नहीं, बस, सहज। हंसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्।

और ऐसा भी नहीं है कि ध्यान करने वाला आदमी समाज, श्रम या कर्म से विमुक्त हो जाता है या जगत से कट जाता है। सत्य तो यह है कि ध्यान से व्यक्ति की संवेदनशीलता का विकास होता है और तत्परता एवं सजगता के साथ व्यक्ति अपने कार्यों को आराम से सम्पादित करता है। हम तो केवल अपने परिचितों से ही मित्रता रख पाते हैं, पर ध्यान-साधक की मैत्री तो मनुष्य से ऊपर उठकर पशु-पक्षी, फूल-पत्ते तथा चाँद-सितारों से जुड़ जाती है। ध्यान न तो गंभीर कृत्य है, न बोझ और न ही रोग। यह तो स्वयं को निर्भार करने की कला है। विधियाँ अलग-अलग हो सकती हैं। जो विधि हमारे लिए अनुकूल हो हम उसी विधि द्वारा स्वयं में उतरने का प्रयास करें। हमारी मौलिक प्रतिभा कुंठित होती जा रही है। ध्यान हमारी प्रतिभा को जगा सकता है। हाँ, हमारे जीवन में ध्यान की उर्वरा भूमि पर कुछ फूल खिल सकते हैं जिन फूलों को मैं नाम देना चाहूँगा सहजता, सजगता, प्रसन्नता, धीरजता, लयबद्धता।

भगवान करे, आप सब लोगों के जीवन में ऐसे ही फूल खिल जाए। और आप ध्यान रूपी उस दिव्य अग्नि के मालिक बनें कि अपरिमित कर्म ईंधन को क्षण भर में भस्म करने की क्षमता उपलब्ध कर लें। आज के लिए इतना ही। आप सबके अन्तर्धरा में विराजित परम पिता परमेश्वर की दिव्य ज्योति को प्रणाम।

❐

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण लेश्या का तिलिस्म

मनुष्य जैसा है, अपने ही कारण है। मनुष्य अपना निर्माण स्वयं करता है। अगर वह विध्वंस प्रवृत्ति का है तो स्वयं के कारण है और सृजनशील है तो भी स्वयं के कारण। जो तुम करते हो, उसका सारा उत्तरदायित्व तुम्हारा है। तुम्हें कोई दुःख नहीं दे सकता, दुःख है तो उसके कारण भी तुम्हीं हो और सुख का कारण भी तुम्हीं। अगर बंधन है तो तुमने ही बँधना चाहा होगा और मुक्ति है तो वह भी तुम्हारी इच्छा का परिणाम है।

मनुष्य की वृत्तियाँ ही उसे सुख और दुःख देती हैं। जैसे विचार होंगे वैसी ही परिणति भी होगी। तुम्हारे सोच-विचार और मानसिकता ही तुम्हारा जीवन बनाते हैं। किसी दूसरे के कारण तुम अच्छे या बुरे इन्सान नहीं हो सकते, यह तो आप पर निर्भर है। मोक्ष और मुक्ति या बंधन तुम्हारे ही क्रिया-कलाप हैं। ओल्ड टेस्टामेंट में सोलोमन का प्रसिद्ध वचन है—'जैसा आदमी सोचता है, वैसा हो जाता है'। (As a man thinks so he becomes.)

समूचे ब्रह्माण्ड में मनुष्य से अधिक अहम अन्य कुछ नहीं है। मनुष्य है तो सागर की महत्ता है, नदियों का मूल्य है, चाँद-सितारों का सौन्दर्य है, धर्म-स्थलों की मूल्यवत्ता है। मनुष्य महत्त्वपूर्ण है इसलिए उस पर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व है। उसकी जिम्मेदारी किसी अन्य पर नहीं थोपी जा सकती।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धम्मपद में बुद्ध कहते हैं—तुम जो हो वह अतीत में सोचे हुए विचारों का परिणाम है। तुम जो होओगे, वह आज सोचे गए विचारों का फल होगा। भगवान कहते हैं कि मनुष्य उसके अपने ही अतीत का परिणाम है। इसलिए जहाँ-जहाँ विचार है, वहाँ-वहाँ संसार है और जहाँ निर्विचार है वहाँ-वहाँ मोक्ष है, मुक्ति है। संसार और मुक्ति, तुम्हारे भीतर है।

भगवान महावीर ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द का उपयोग किया—'लेश्या'। 'लेश्या' का अर्थ है—मन, वचन, काया की कषाययुक्त वृत्तियाँ। मनुष्य की आत्मा बहुत से अच्छे और बुरे परदों में छिपी हुई है। आज के सूत्रों में भगवान इन्हीं परदों के प्रथम आवरण कृष्ण लेश्या के संबंध में बता रहे हैं। लेश्याएँ छः प्रकार की हैं जिनमें प्रथम है कृष्ण लेश्या। लेश्या रंगों का गहरा विज्ञान है। महावीर ने सबसे पहले रंग और मनुष्य की वृत्ति के अन्तर-संबंध में खोज की। आज तो रंगों का भी विज्ञान विकसित हो गया है, लेकिन महावीर पहले व्यक्ति थे जो जान गए कि रंग और मनुष्य के विचार दोनों का एकांतिक संबंध है। आज तो विज्ञान के द्वारा ऐसे चित्र खींचना भी संभव हो गया है।

हम महापुरुषों के चित्रों में एक विशिष्ट आभामण्डल देखते हैं। हर मनुष्य की अपनी आभा है जो उसकी मनोदशाओं का प्रतिबिम्ब होती है। महापुरुष जीवन के सत्य प्राप्त करते हैं। इस कारण उनके विचार निष्कलंक, निर्दोष और निष्पाप होते हैं, उनका आभामण्डल अत्यंत उज्ज्वल होता है और मनुष्य की जैसी मानसिकता होती है, जैसी वैचारिक क्षमता होती है उसके अनुसार उनका आभामण्डल निर्मित होता है। किसी का आभामण्डल काला है, किसी का नीला, किसी का कापोत और किसी का उज्ज्वल या धुँधला है और किसी का शुक्ल।

हिमालय की गुफाओं में असीम शांति मिलती है, क्योंकि वहाँ साधकों ने साधना की, उनकी शुभ तरंगें वहाँ विद्यमान हैं जो आगंतुक को शांत कर देती हैं, उसका उद्वेलन क्षीण हो जाता है। आप अनुभव करेंगे कि ऐसा स्थान जहाँ प्रतिदिन गलत कार्य सम्पादित किए जाते हैं, वहाँ जाकर बैठने मात्र से आपके मनोमस्तिष्क में अशुभ विचार आने लगते हैं और किसी अच्छे वातावरण के मध्य अच्छे विचार आते हैं। कचरे के ढेर से दुर्गंध और फूलों से सुगंध ही आती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा हुआ, श्रवण कुमार अपने अंधे माता-पिता को कावड़ में बिठाकर, कंधे पर कावड़ लेकर चल रहा था। वह उन्हें तीर्थ-दर्शन के लिए ले जा रहा था। वे कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि के निकट पहुँचे। श्रवण के मन में अचानक क्या हुआ कि उसने कावड़ उतारकर रख दी और माता-पिता को आगे ले जाने से इन्कार करने लगा। कुछ अनर्गल भी बोल दिया। माता-पिता बमुश्किल टकराते-बचते उस क्षेत्र से बाहर निकले। जैसे ही वहाँ से बाहर आए श्रवण कुमार को प्रायश्चित्त होने लगा। वह बार-बार उनसे क्षमा माँगने लगा। तब पिता ने कहा, 'इसमें तेरा दोष नहीं है पुत्र। यह भूमि ही ऐसी है, यहाँ का वायुमण्डल ही दूषित है। यहाँ भाइयों-भाइयों के बीच युद्ध हुआ है। यहाँ पुत्र ने पिता की हत्या की है, पिता ने पुत्र को नहीं छोड़ा। गुरु ने शिष्य को मारा है, शिष्य ने गुरु को मारा है। यह इस स्थान का ही प्रभाव है, यहाँ बेटा बाप की सेवा कैसे कर सकता है ?'

जैसे मनुष्य के विचार होंगे, वैसा ही लेश्यामंडल/आभामण्डल होगा। विचारों के क्रमशः परिष्कृत होने से लेश्या-रंग भी बदलते जाते हैं। आज के सूत्र मनुष्य के मूल विचारों से जुड़े हुए हैं। धन-सम्पत्ति से व्यक्ति का आकलन मत करना, उसके विचार ही जीवन का प्रतिबिम्ब हैं। भगवान महावीर प्रथम वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने मनुष्य के मन को पढ़ा, मन की उन तरंगों को पढ़ा, जिससे व्यक्ति बंधन और मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है। महावीर कहते हैं कि मनुष्य सबसे पहले अपने विचारों को देखे, समझे। जब तक व्यक्ति अपने छिद्रों को, आगमन के स्रोतों को बन्द नहीं कर लेता, तब तक चाहे जितना उलीचो, नौका में पानी भरता ही रहता है। इसलिए भगवान कहते हैं कि चाहे जितने व्रत-उपवास, पूजा-पाठ कर लो, किन्तु वैचारिक पवित्रता नहीं आती है, तो उसकी लेश्याएँ कभी परिष्कृत नहीं हो सकती।

सूत्र है—

चंडो ण मुंचई वेरं भंडणसीलो य धरमदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं, लक्खणमेयं तु किण्हस्स।।

स्वभाव की प्रचण्डता, रौद्रता, वैर की मजबूत गाँठ, झगड़ालू वृत्ति, धर्म और दया से शून्यता, दुष्टता, समझाने से भी नहीं मानना—ये कृष्ण लेश्या के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लक्षण हैं। इनसे बना है अँधेरे का पहला पर्दा। जीवन में अँधेरा है तो दीपक भी खुद ही जलाना है, क्योंकि अँधेरा भीतर है। बाहर के दीपक से कुछ न होगा, जब तक कि तुम भीतर अँधेरे को निर्मूल न कर दो। और ये जड़ें हैं—स्वभाव की प्रचंडता।

आप देखते होंगे कि बहुत से लोगों को अकारण क्रोध आ जाता है। क्रोध उनका स्वभाव बन जाता है। इतना क्रोध कि लोग उनसे बात करने से हिचकिचाते हैं। आश्चर्य होता है कि जहाँ क्रोध का कोई कारण न था वहाँ भी क्रोध टपक रहा है। स्वभाव की प्रचंडता इतनी तीव्र होती है कि छोटे-छोटे निमित्तों से व्यक्ति अपने भीतर कषाय पैदा करता रहता है। सर्प के अंदर तो वैरी को देखकर डंक मारने की प्रवृत्ति जगती है, लेकिन कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जिनका स्वभाव ही डंक मारने का हो जाता है। उनका स्वभाव ही लोभ और अहंकार बन गया है।

कोई गलत काम हो और क्रोध आए, सामने धन मिले और लोभ जागे सामने सौंदर्य हो और कामना जागे, बात समझ में आती है, लेकिन स्वभाव की प्रचण्डता हर समय क्रुद्ध बनाए रखे तो बात चिंतनीय है। वहाँ गाली देने या न देने का सवाल ही नहीं है। वे गलियाँ खोज लेते हैं। जहाँ न हो गली, वहाँ भी निकाल लेते हैं। महावीर कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति जिसने क्रोध को आदत बना लिया है, कृष्ण लेश्या में दबाये रखेगा—क्रोध, रौद्रता, दुष्टता।

घर के अँधकार को तो हर कोई मिटा सकता है, लेकिन खुद के अंधकार को खुद ही मिटाना पड़ता है। इसलिए भगवान कहते हैं कि कृष्ण लेश्या से मुक्त होने के लिए स्वभाव की प्रचंडता त्यागनी होगी। ऐसी किसी वृत्ति को आदत बनने से रोकना होगा। क्रोधी आदमी अकेला भी हो, तो भी क्रोधी होता है। उसमें मानो क्रोध की तरंगें उठती रहती हैं। उसके हर क्रियाकलाप में क्रोध की छाया होगी।

व्यक्ति के भीतर स्वभाव की प्रचण्डता और वैर की मजबूत गाँठें हिंसा के निमित्त उत्पन्न करती हैं। तुम सड़क पर चलते हो, कुत्ता दिखाई पड़ता है, तुम उठाकर पत्थर मार ही देते हो। बगीचे में जाते हो, खिले हुए फूलों को तोड़ डालते हो और थोड़ी देर बाद उन्हें फेंक देते हो, ऐसी दुष्टता तुम्हारे भीतर है और अगर दुष्टता आदत बन जाती है, तो वह खतरनाक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए ध्यान रखना क्रोध तुम्हारे अंदर बसेरा न कर ले। क्रोधी का क्या, जहाँ कारण दिखाई नहीं पड़ता था, वहाँ भी कारण खोज लेते हैं।

मैंने सुना है : एक पति-पत्नी में निरन्तर झगड़ा होता रहता था। पत्नी मनोवैज्ञानिक के पास गई और कहने लगी कि हमारा झगड़ा समाप्त करवाओ। मनोवैज्ञानिक उस स्त्री के स्वभाव को जानता था। उसने कहा कि तुम कुछ नम्रता से, प्रेम से व्यवहार करो, थोड़ा झुक जाओ। एक हाथ से ताली नहीं बजेगी, तू थोड़ा विनम्र हो जा, बात बन जाएगी। पत्नी ने पूछा कि इसके लिए मैं क्या करूँ ? मनोवैज्ञानिक ने पूछा, 'तुम्हारे पति का जन्मदिन कब है ?' उसने कहा, 'कल ही।' मनोवैज्ञानिक ने कहा, 'ठीक है, तब तुम उन्हें कुछ उपहार दो, इस अवसर पर उसे कुछ भेंट दो। शायद पति भी तुम में उत्सुक हो जाए और तुम्हारे जन्मदिन पर कुछ भेंट ले आए।'

पत्नी को बात समझ में आ गई। वह बाजार गई और दो टाई खरीद लाई। दूसरे दिन सुबह-सुबह ही पति को भेंट कर दी। पति विस्मित था कि खुद के लिए तो बहुत सामान लाती थी लेकिन आज उसके लिए ! आज यह क्या हो गया उसके लिए दो-दो टाई ! वह बहुत खुश हुआ और कहा कि आज घर में खाना मत बनाना किसी फाइव स्टार होटल में चलेंगे। पत्नी ने सोचा, मनोवैज्ञानिक का नुस्खा कारगर हो रहा है।

पति महोदय ने झटपट स्नान किया, कपड़े बदले, पत्नी दो टाई लाई थी, उनमें से एक टाई पहनकर बाहर आया। पत्नी ने देखा और कहा, 'अच्छा तो दूसरी टाई घटिया है, जो तुम्हें पसंद नहीं आई।' 'एक बार में एक ही टाई पहनी जा सकती है', पति बुदबुदाता रहा। अब वह कोई भी टाई पहनता....विवाद शुरू।

क्रोध कहीं तुम्हारी आदत तो नहीं बन गया है ? कभी क्रोध आ जाए तो बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है, बस सावधान रहना चाहिए कि क्रोध आदत न बन जाए। धीरे-धीरे देखना अपनी वृत्तियों को, कषायों को और उनसे मुक्त हो जाना। वरना क्रोध में तुम कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाओगे। जो भी होगा वह क्रोध ही होगा।

सूफी फकीर बोकोजू से मिलने एक युवक आया। शायद घर में झगड़ा करके आया होगा, बहुत उफन रहा था। बोकोजू कुटिया में बैठे थे, दरवाजा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंद था। युवक ने जोर से दरवाजे को धक्का दिया। भीतर आया, इधर-उधर जूते फेंके और बोकोजू को प्रणाम किया और हाँफते हुए कहा, 'शान्ति की आकांक्षा रखता हूँ, कोई मार्ग बताएँ।' बोकोजू ने कहा, 'पहले खड़ा हो और जाकर दरवाजे से माफी माँग, जूतों को नमस्कार कर।' युवक ने कहा, 'क्या मतलब ? दरवाजे से माफी ! जूतों को नमस्कार ! अरे, ये तो जड़ पदार्थ हैं, इनसे माफी ?' बोकोजू ने कहा, 'क्रोध करते समय तुमने यह न सोचा कि तू जड़ पदार्थों पर क्रोध कर रहा है। अरे, इन जड़ चीजों ने तुम्हारी चेतना को आंदोलित कर दिया। जूते को जब क्रोध से फेंका, तब न सोचा कि जूते पर क्या क्रोध करना। दरवाजे को कितनी अशिष्टता से धक्का दिया। जाओ वापस और क्षमा माँगकर आओ, नहीं तो मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं।'

यह व्यक्ति कृष्ण लेश्या से घिरा है। उसने जानकर क्रोध नहीं किया होगा। क्रोध उसका अंग बन गया है। मैं चलते हुए व्यक्ति को देखकर बता सकता हूँ कि वह किस स्थिति में चल रहा है। क्रोधी व्यक्ति की चाल कुछ और होगी, प्रेम से भरे व्यक्ति की चाल कुछ और होगी। देखना कि तुम किन्हीं भाव-दशाओं के नाम पर विभाव-दशाओं में लिप्त तो नहीं हो गए हो। कहीं ऐसा तो नहीं कि क्रोध, अहंकार, हिंसा तुम्हारी विवशता बन गए हैं, दुष्टता तुम्हारा स्वभाव बन गई है। यह दिखाई दे जाए तो समझो कृष्ण लेश्या पहचान में आ गई है। जिससे मुक्त होना है आखिर उसको देख लेना जरूरी है।

लोग ऐसे होते हैं जो जन्म-जन्म तक वैर की गाँठ बाँधकर रखते हैं। सबकुछ भूल जाते हैं, वैर नहीं भूलते। ऐसा भी होता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी वैर चलता ही रहता है। पुश्तैनी दुश्मनी में क्या रखा है ? बाप मर जाता है तो बेटे को सीख दे जाता है कि अमुक अपना दुश्मन ! वैर शुरू किसी ने किया, वे कभी के मर चुके दादा-परदादा, लेकिन दुश्मनी जारी है, पुश्तैनी दुश्मनी। भगवान कहते हैं—

न हि वैरेण वैराणी, सम्मन्तीध-कदाचन
अवैरेण हि सम्मन्ती एस धम्मो सनंतनो।

वैर से कभी वैर शांत नहीं होता। जैसे—खून से सना वस्त्र खून से साफ नहीं होता। अवैर से वैर मिटेगा, यही विश्व का सनातन धर्म है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य के अन्तर्विचारों की क्षुद्र वृत्ति ही जीवन में वैर की गाँठों का निर्माण करती है। यह गाँठ जन्म-जन्म तक चलती रहती है। आपको पता है न कमठ और पार्श्वनाथ की वह गाथा ! वैर की गाँठ बँधी, तो बँधती ही चली गई। वैर की गाँठ का अंत भला कहाँ होता है ? मनुष्य सौ उपकार भूल जाता है, लेकिन एक अपमान याद रखता है। देखना, कहीं ऐसा तो नहीं हो रहा, भीतर उठने वाले कषाय और क्रोध से वैर की गाँठ बँध रही है ? स्वयं को क्रोध और कषाय से मुक्त करने की कोशिश करें। अहंकार के कारण वैर की गाँठ बँधती है, अहंकार ही कृष्ण लेश्या का आधार है। किसी की दी गई गाली तुम्हें चुभती है क्योंकि तुम अहंकार से घिरे हो। तुम तो मित्र भी उन्हीं को समझते हो जो तुम्हारे अहंकार को तृप्त करते हैं। जितना अहंकार होगा, उतनी ही वैर की गाँठें मजबूत होंगी। जैसे-जैसे क्रोध और कषाय से स्वयं को मुक्त करोगे, वैसे-वैसे स्वभाव में शीतलता आती जाएगी।

कहते हैं, बोकोजू बहुत छोटे थे, तभी फकीर बन गए थे। बोकोजू के गुरु ने उन्हें अपनी कुटिया में झाड़ू लगाने का काम सौंपा। वह छोटा-सा बालक बड़ी तल्लीनता से सफाई करता। एक दिन झाड़ू लगाते समय बुद्ध की प्रतिमा गिर पड़ी और टूटकर चूर-चूर हो गई। बालक बोकोजू घबराया, क्योंकि वह जानता था, गुरु जी थोड़े उग्र स्वभाव के हैं। बहुत कम गुरु विनम्र और शांत होते हैं। ज्यादातर को यही दंभ होता है कि मैं गुरु, तू शिष्य।

बोकोजू ने गुरु को कुटिया की ओर आते देखा तो मूर्ति के टुकड़े समेटे और कपड़े में बाँधकर बैठ गया। जैसे ही वे अंदर प्रविष्ट हुए बोकोजू ने पूछा, 'गुरुजी, किसी का जन्म हुआ और वह जवानी में ही मर जाए तो हम क्या कहेंगे ?' गुरु बोले, 'समय का प्रभाव कहेंगे और क्या। समय बड़ा बलवान है।' तब बोकोजू ने कहा, 'कल्पना करें, अगर कोई मूर्ति टूट जाए तो ?'

'तब भी समय का प्रभाव ही कहेंगे, बेटा', गुरु ने कहा।

'लीजिये समय के प्रभाव से यह मूर्ति टूट गई है, मेरा कोई दोष नहीं है।' बोकोजू कहता है।

तब गुरु उसे जीवन का सूत्र देते हैं कि जीवन में जो भी घटे उसे समय का प्रभाव समझना। अनुकूल और प्रतिकूल सभी स्थितियों को समय का प्रभाव मानना। गुरु के द्वारा दिया गया यह अद्‌भुत सूत्र बोकोजू का जीवन ही बदल देता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान कहते हैं स्वभाव की प्रचंडता और वैर की मजबूत गाँठ जन्मों-जन्मों तक चलती रहती है। छोटी-सी वैर की गाँठ—'अण थोवं, वण थोवं, अग्गि थोवं, कषाय थोवं च।' छोटी-सी चिंगारी कब दावानल का रूप ले ले, पता नहीं चलता। वैसे ही कषाय की छोटी-सी गाँठ कब विराट और विकृत रूप ले ले, मनुष्य को पता नहीं लगता। कभी कोई छोटी-सी बात, अंगारे की तरह सदा-सदा सुलगती रहती है और तुम बदला लेने को आतुर रहते हो। कृष्ण लेश्या से भरा आदमी प्रतिक्रिया से संचालित होता है। विनम्र अपने बोध से जीता है।

कृष्ण लेश्या की तीसरी पहचान है—'झगड़ालू वृत्ति'। लोग झगड़ा करने को उत्सुक और तत्पर रहते हैं। जैसे कह रहे हों आ बैल मुझे मार। झगड़ा उनका स्वभाव बन जाता है। छोटी-छोटी बातों पर लड़ना-झगड़ना। लगता है झगड़ना ही उनका काम रह गया है, झगड़ना ही उनकी प्रवृत्ति बन चुकी है।

एक बार ऐसा ही हुआ। कहते हैं : एक निःसंतान दंपति को किसी ज्योतिषी ने जन्म-पत्री देखकर कहा कि नौ माह बाद तुम्हें पुत्र-प्राप्ति होगी। दोनों घर आए और लगे भविष्य की योजना बनाने कि उसे कैसे, कहाँ पालेंगे; उसके लिए क्या-क्या करेंगे; उसे कहाँ पढ़ाएँगे; जन्मदिन कैसे मनाएँगे; किन-किन मेहमानों को बुलाएँगे। सबकुछ तय हो गया। इतने में उसकी उच्च शिक्षा की बात हुई। पिता ने कहा कि मैं तो उसे वकील बनाऊँगा। पत्नी उसे डॉक्टर बनाना चाहती थी। बात बढ़ गई मगर दोनों अपनी-अपनी राय पर कायम। कुछ दिनों में मामले ने इतना तूल पकड़ा कि बात तलाक तक जा पहुँची।

अदालत में अर्जियाँ दे दी गईं। दोनों ने अपने पक्ष प्रस्तुत किए। पिता ने कहा कि मैं पिता हूँ इसलिए जैसी चाहूँगा, वैसी शिक्षा दूँगा। उसे एडवोकेट ही बनाऊँगा। माँ अड़ गई कि वह भी माँ है, उसका भी बच्चे पर पूरा हक है। वह तो उसे डॉक्टर ही बनाएगी।

जज परेशान, उसने कहा, 'आप लोग शांत हो जाइए, मैं बच्चे को बुलाता हूँ, उसी से पूछ लेते हैं कि वह क्या बनना चाहता है ?' दोनों बगलें झाँकने लगे। कहा, बच्चा तो अभी तक ज्योतिषी की जन्मपत्री में है।

जब दो व्यक्ति लड़ते हैं, विवाद करते हैं तो जरूरी नहीं कि वह विवाद सत्य के लिए ही हो। वे तो अपने पक्ष सिद्ध करते हैं। तुम वादी-विवादी नहीं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सृजनात्मक बनो। अधिकांशतः व्यक्ति मिटाने में बल महसूस करता है। दुनिया में सृजनात्मक लोग बहुत कम हैं। मनुष्य जिस ऊर्जा को लेकर पैदा होता है उसके दो ही उपयोग हैं—सृजन या विध्वंस। जो झगड़ालू नहीं हैं, विनम्र हैं, वे उदार, सरल और सौम्य होते हैं और कुछ बनाने में लगे रहते हैं। जो मिटाने में लग जाते हैं, वे हर चीज पर झगड़ते और विवाद करते हैं।

भगवान कहते हैं, कुछ लोग वैर की गाँठ बाँध लेते हैं, कुछ लोग झगड़ालू वृत्ति के होते हैं और कुछ धर्म एवं दया से शून्य होते हैं। तुम अपने द्वारा किए जाने वाले धर्म और दया पर जरा नजर डालो। तुम मंदिर जा सकते हो, उपवास कर सकते हो, लेकिन संभव है कि तब भी धर्म आत्मसात् न हो रहा हो। देखना कहीं तुम धर्म की फेहरिस्त तो नहीं बना रहे कि तुमने इतनी तपस्या की, इतना दान दिया। ऐसा करके तुम अपने अहंकार को ही पोषित कर रहे हो। तुम दया भी करते हो तो दूसरों को दिखाने के लिए। किसी भिखारी को कुछ पैसे देते हो तो आसपास देख लेते हो कि तुम्हारी दया और दान सब देख रहे हैं। अपने भीतर झाँककर देखो कि यह धर्म और दया किस प्रयोजन से कर रहे हो ? क्या सचमुच हमारे जीवन में धर्म और दया है ?

भगवान आगे कहते हैं—धर्म और दया से शून्य व्यक्ति की प्रवृत्ति 'दुष्टता' होगी। तुमने देखा होगा कि कई बार विवाद हो जाता है, तुम जानते हो सामने वाला ठीक है, लेकिन तुम्हारे अहंकार की दुष्टता तुम्हें समझने नहीं देती और तुम चिल्लाते चले जाते हो। तुम्हारी दुष्टता बहुत छोटी-छोटी बातों में प्रगट होती है। सड़क पर चलते हो, छोटा बच्चा मिला, चाँटा मार दिया; गाय जाती दिखी, लकड़ी मार दी; पक्षी दाना चुग रहे हैं, पत्थर फेंक दिया उन पर; यह दुष्ट प्रवृत्ति है। और ऐसे लोग समझाने से भी नहीं समझते। जो समझाने पर भी नहीं मानता, भगवान कहते हैं ऐसा व्यक्ति कृष्ण लेश्या से घिरा है। वह अंधकार में ही जन्मता है, अंधकार में ही जीता है और अंधकार में ही चला जाता है। ऐसे लोग संसार में बंधनों का ही निर्माण करते हैं। अंतर्दृष्टि खुलने लगे तो कृष्ण लेश्या अपने आप तिरोहित हो जाएगी।

अगर रोशनी है तो परमात्मा की, और अंधेरा है तो मेरा, ऐसा जिसने समझा उसकी कृष्ण लेश्या टिक नहीं सकती। हम पहचानें अपने मन की स्थिति और वृत्ति। स्वयं को पहचानकर ही हम अपनी लेश्याओं के वर्तमान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप से आगे बढ़ सकते हैं। उन्हें निर्मल करने के लिए प्रयत्नशील हो सकेंगे।

ध्यान रखें क्रोध कहीं हमारी आदत न बन जाए। वैर की गाँठें न बंध जाए। हम क्रोध की बजाय शांति को अहमियत दें। वैर की बजाय भाईचारा और प्रेम को मूल्य दें। दुष्टता की बजाय सभी के प्रति शिष्टता को महत्त्व दें—यही वे तीन सूत्र हैं, जो हमें कृष्ण लेश्या के दलदल से बाहर लाएँगे और हम शांति, शुद्धता और निर्मलता की ओर सहज ही प्रवृत्तमान होंगे।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेश्याओं के पार धर्म का जगत

छः राहगीर थे। वे जंगल से गुजर रहे थे, लेकिन चलते-चलते मार्ग भटक गए। रास्ते में कोई गाँव न आया, कोई ठिकाना भी नजर नहीं आया और उन चलते हुए राहगीरों को भूख सताने लगी। कुछ देर बाद उन्हें फल से लदा एक वृक्ष दिखाई दिया। उन्हें फल खाने की इच्छा हुई। एक ने सोचा कि भूख बहुत तेज है एक-एक फल क्या तोड़ेंगे, जड़मूल से काटकर ही इसके फल खाए जाएँ। दूसरे राहगीर के मन में आया कि छः लोग हैं एक-एक क्या तोड़ें, इसका स्कंध ही काट लेते हैं। पेड़ गिर जाएगा और हम खा लेंगे, पेड़ पुनः भी उग जाएगा। तीसरे राहगीर ने सोचा कि वह जो मोटी-सी शाखा दिखाई दे रही है, उसे ही तोड़ लेंगे। उसमें फल भी बहुत लगे हैं। चौथे ने सोचा कि एक उपशाखा ही तोड़ी जाए, उसी के फलों से हमारा काम चल जाएगा। पाँचवे के मन में विकल्प आया कि भूख तो लगी है, पर पूरे वृक्ष को तोड़ने से क्या लाभ, स्कंध काटने का क्या मतलब, शाखा-उपशाखा भी क्यों तोड़ी जाए, केवल फल ही तोड़ लिए जाएँ। छठे राहगीर के मन में कुछ और ही विचार आया। उसने सोचा कि फलों से लदा हुआ वृक्ष है, जरूर कुछ फल नीचे भी गिरते होंगे। हम तो उन टपके हुए फलों को ही चुनकर खा लेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर ने मनुष्य के चिंतन के आधार पर लेश्या-विज्ञान निर्मित किया। मनुष्य के जैसे मानसिक विकल्प होते हैं, जैसी सोच होती है वैसी ही लेश्या बनती है। इन छः राहगीरों के विचार, वाणी तथा कर्म क्रमशः छः लेश्याओं के उदाहरण हैं। लेश्याएँ छः प्रकार की हैं-कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल। ये छह लेश्याएँ वास्तव में चेतना पर चढ़े छः बहुरंगी परदे हैं।

पहला परदा है कृष्ण लेश्या का। जैसा कि पहला राहगीर सोच रहा है कि वृक्ष को जड़ से ही उखाड़ लूँ। यह स्वभाव की क्रूरता है, व्यवहार में रौद्रता है, अंतर्मन में हिंसक वृत्ति है। ऐसा व्यक्ति अपने हित के लिए सामने वाले को समूल नष्ट करने को तैयार हो जाता है। कृष्ण लेश्या से भरा आदमी महज हिंसा से भरा होता है।

दूसरा राहगीर सोचता है कि 'स्कंध काटा जाए'—यह नील लेश्या वाला व्यक्ति है। काले से कुछ हल्का, नील वर्ण में आ गया। पूरे वृक्ष को क्यों नष्ट करें। स्कंध काटने पर वृक्ष पुनः अंकुरित हो जाएगा, कृष्ण के बाद नील। अन्धेरा अब भी है। फिर तीसरा सोचता है, शाखा ही काट ली जाए—यह कापोत लेश्या का व्यक्ति है। नील से कुछ उज्ज्वल, लेकिन अभी इसे भी वृक्ष की आत्मा का ख्याल नहीं है।

महावीर ने मनुष्य के मन की जिन सूक्ष्म तरंगों को पढ़ा, वह लेश्या के माध्यम से प्रगट हुआ। लेश्या महावीर की विचार पद्धति का विशिष्ट शब्द है। लेश्या का अर्थ होता है—व्यक्ति के मन, वचन और काया की कषाय वृत्तियाँ। कभी ये कषाय शुभ मार्ग पर चलती हैं, कभी अशुभ की ओर उन्मुख हो जाती हैं। आत्मा इनसे घिरी रहती है। आत्मा के आसपास जब लेश्याओं का आवरण छा जाता है, तो मनुष्य की मौलिक चेतना छिप जाती है, आत्मा परदों से घिर जाती है और परदे का रंग जितना गहरा होता है, अंधकार भी उतना ही सघन होता है। जिस पर कृष्ण लेश्या पड़ी है, उसे औरों की आत्मा का तो क्या, अपनी आत्मा का भी पता नहीं चलता।

मनुष्य की वैचारिक चेतना ही लेश्या बनती है। ये लेश्याओं के परदे आत्मा को ढक देते हैं। जैसे-जैसे पर्दे उठते हैं वैसे-वैसे भीतर की झलक स्पष्ट होने लगती है। ऐसा समझें—जैसे आप स्टेज पर बैठे हैं और छः पर्दे टांग दिए गए हैं। पहला पर्दा काला है, आप गहरा अँधेरा पाते हैं। काला पर्दा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हटाया गया, दूसरा नीला पर्दा है, अंधकार कुछ कम हुआ। नीले के पीछे से कापोत/स्लेटी रंग का पर्दा आया, अंधकार थोड़ा और कम हुआ। इसके पीछे से पीत वर्ण पर्दा निकला, अंधकार में और कमी आई। इसके बाद आया गुलाबी और फिर आया श्वेतवर्णीय। अर्थात् क्रमशः उजाला बढ़ता गया और अंधकार छँटता गया। अन्तिम लेश्या है शुक्ल लेश्या। अर्थात् श्वेतवर्णीय परदा। जब यह भी गिर गया, तो मात्र चेतना का सहज शुद्ध/निर्मल रूप रह गया। अर्थात् लेश्यारहित/निष्कलुष।

आप जानते हैं, महावीर निर्वस्त्र रहे। वे तो राजघराने से आए थे कपड़ों की कोई कमी न थी, वस्त्र मुक्ति में बाधक भी नहीं होते और न ही जीवन-संस्कार में वस्त्र बाधा उत्पन्न करते हैं। फिर क्या हुआ जो वे निर्वस्त्र थे। कुछ गहन कारण रहा होगा कि वे निर्वस्त्र रहे ! कारण है—'जैसे मैं तन को निर्वस्त्र कर चुका हूँ, वैसे ही आत्मा को भी निरावरण करना है।'

शरीर का आवरण वस्त्र है और आत्मा का आवरण लेश्याएँ। इसलिए महावीर की साधना रंग-बैरंग से मुक्ति है। भगवान कहते हैं कि शुभ्र लेश्या भी पर्दा है। जब तक रंग है तब तक पर्दा है। जैसे-जैसे शुभ लेश्याओं का जन्म होता है व्यक्ति श्वेत की ओर बढ़ता है। दृष्टि की गहराई बढ़ती है। तेजो लेश्या से क्रांतिकारी परिवर्तन शुरू होता है। वह राहगीर जो सोच रहा है कि शाखा ही काटी जाए, तेजो लेश्या से घिरा व्यक्ति है। उसे वृक्ष का कुछ विचार है। उसे खयाल है कि क्यों वृक्ष को नष्ट किया जाए जब शाखा से ही काम चल सकता है। हमारे छोटे-छोटे कृत्यों में हमारी लेश्या प्रगट होती है।

हमारे यहाँ योग-सूत्र में पतंजलि ने सात-चक्रों की बात की है। महावीर का लेश्या-विज्ञान और योग के चक्र समानांतर अर्थ रखते हैं। व्यक्ति की चेतना जब मूलाधार से जुड़ी होती है, वह कृष्ण लेश्या में जीता है। मूलाधार में जीने वाला व्यक्ति अंधकार में जीता है। और तीन चक्रों के पार हृदय-चक्र में जब ऊर्जा पहुँचती है तब वह तेजोलेश्या का रूप धारण कर लेती है। क्योंकि हृदय मनुष्य की शुचिता का परिचायक है। जब छठवें चक्र में आज्ञाचक्र में शक्ति पहुँचती है, वह शुक्ल लेश्या में पहुँचा हुआ व्यक्ति है। आज्ञाचक्र में पहुँचा हुआ व्यक्ति महावीर की परिभाषा में शुक्ल लेश्या में पहुँचता है। पतंजलि इसे सहस्रार कहते हैं। महावीर ने इसे शब्द दिया—वीतराग। रंग-राग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सब गया, सब लेश्याएँ समाप्त हो गईं। कृष्ण लेश्या तो गई ही, श्वेत लेश्या भी न रही। काले पर्दे तो उठे, सफेद पर्दे भी उठ गए, कोई पर्दा ही नहीं रहा।

पतंजलि कहते हैं कि ऊर्जा षट्-चक्रों का भेदन कर सहस्रार में पहुँचती है और महावीर कहते हैं छः लेश्याओं के पार साधक वीतरागता को उपलब्ध होता है। लेकिन कृष्ण लेश्या में दबे हुए आदमी के जीवन में वसंत आता ही नहीं। उसके चित्त में सदा लोभ लगा ही रहता है। जब धन और जीवन में से किसी एक को चुनना हो तो तुम धन चुनते हो, जीवन नहीं। तुम्हारा लोभ बहुत गहरा है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन टैक्सी से पहाड़ों की यात्रा करने के लिए गया। वह शिखर तक पहुँच गया। फिर लौटने की बारी आई। यात्रा सम्पन्न हुई। ढलान से उतरते हुए अचानक टैक्सी का ब्रेक खराब हो गया। ढलान बहुत तेज थी। ड्राइवर घबराया और उसने पूछा, मुल्लाजी ! गाड़ी का ब्रेक खराब हो गया है, गाड़ी नियंत्रण के बाहर होती जा रही है, मैं क्या करूँ ?

नसरुद्दीन ने कहा, 'सबसे पहले मीटर बंद करो, फिर जो चाहे करना।' यह मनुष्य की लोभ-वृत्ति है। अपने भीतर के इस चिंतन को देखो, इसी से कृष्ण लेश्या बनती है।

मुल्ला का बेटा बड़ा हो गया था। एक दिन उसने अपने पिताजी से पूछा कि दाँतों का डॉक्टर बनूँ या कानों का ? मुल्ला ने कहा, 'मेरा बेटा होकर ऐसी नासमझी की बात पूछ रहा है। अरे, डॉक्टर ही बनना है तो दाँतों का डॉक्टर बन।' बेटे ने पूछा, 'क्यों ?' नसरुद्दीन ने कहा, 'बेटा ! कान तो दो ही होते हैं और दाँत बत्तीस।'

अगर भीतर लोभ है तो हर तरफ लोभ ही छाया रहेगा। तुम्हारे सभी निर्णय, तुम्हारा कहना-बोलना, चलना-फिरना सभी लोभ से परिचालित होंगे। चौबीस घंटे में तुम्हारा शायद ही कोई कृत्य ऐसा हो जो लोभ से मुक्त हो। तुम्हारा तो मंदिर भी जाना, दुकान पर ही जाना है। वहाँ भी सौदा, एक पैसा देकर लाख की कामना। किसी मुकदमे में जीत जाऊँ, खूबसूरत पत्नी मिल जाये या पुत्र आज्ञाकारी हो जाए और भी न जाने कितने लोभ, मकान बन जाए, दुकान चल जाए....। जब मैं ध्यान की बातें कहता हूँ तो लोग पूछते हैं कि क्या मिलेगा; प्रार्थना भी करेंगे तो पूछेंगे कि इससे क्या मिलेगा ? तुम्हारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन में क्या कुछ ऐसा भी है जो उपयोगिता-शून्य हो। मैं तुमसे कहता हूँ ध्यान से सिर्फ ध्यान मिलेगा। ध्यान जब पूरी तरह बरसता है तो उसी बरखा का नाम परमात्मा है। तुम्हें प्रति पल देखना होगा, विचार करना होगा कि कहाँ-कहाँ कृष्ण लेश्या मजबूत हो रही है।

तुम्हारे अंदर अहंकार की गाँठ भी बहुत गहरी है। तुम जमीन-जायदाद को लेकर भी अहंकार से भर जाते हो। लेकिन क्या यह जानते हो कि विश्व के मानचित्र पर वह सुई की नोंक के बराबर भी न होगी।

कहते हैं, दो चींटियाँ, जो सगी बहनें थीं, किसी जंगल से गुजर रही थीं। तभी सामने से एक हाथी आता हुआ दिखाई दिया। एक चींटी ने कहा, 'ए हाथी, किनारे चल, देखता नहीं हम चल रहे हैं।' हाथी भला चींटी की बात क्यों सुनता। वह मदमाती चाल में चलता ही रहा। तब दूसरी चींटी बोली, 'क्यों सुनाई नहीं देता क्या, मरने की इच्छा हो रही है क्या, हम तेरी हड्डी पसली बराबर कर देंगी।' हाथी अनसुना कर चलता ही रहा। तब चींटियों ने सोचा, इसे सबक सिखाना ही होगा। एक ने कहा चलो मिलकर इसे मजा चखाते हैं। तब दूसरी ने कहा, रहने दो। लोग कहेंगे दो चींटियों ने मिलकर बेचारे एक हाथी को हरा दिया। चलो, दूसरे रास्ते से चलते हैं। यह अहंकार चींटियों का !

आदमी का बचपन असहाय, कमजोर होता है। वह माँ और पिता पर निर्भर होता है। माँ-बाप को बच्चे को बड़ा करना है, इसलिए बच्चों को कई दफा डाँटना भी पड़ता है, तो सही बातें भी बताई जाती हैं, गलत बातों से रोकना भी होता है। वह डाँट-डपट घाव बनकर भीतर रह जाती है। तब बच्चे बड़े होने पर बूढ़े माता-पिता को सताना शुरू कर देते हैं। अब बदला शुरू हो गया। माँ-बाप के साथ भी वैर की गाँठ बन जाती है। यह गाँठ जितनी गहरी होगी, कृष्ण लेश्या का परदा उतना ही सघन होगा। अहंकार और क्रोध की शक्ति निर्बल के सामने ही प्रकट की जाती है। एक चक्र चलता है—पति दफ्तर से बॉस की डाँट खाकर आता है, गुस्सा पत्नी पर उतारता है, पत्नी बच्चे पर और बच्चे अपने खिलौनों पर। फिर यही बच्चे बड़े होकर उसी क्रम को दोहराते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक बस में यात्रा कर रहा था, साथ में पत्नी भी थी। बस ठसाठस भरी हुई थी। वे दोनों एक सीट पर बैठ गये। पास में एक युवती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी खड़ी थी। उसका आँचल नीचे लटका हुआ था। बस चलती, हवा लगती और पल्ला लहरा-लहराकर मुल्ला के पाँवों को स्पर्श करता। नसरुद्दीन ने पत्नी से कहा, यह महिला मुझे भगवान बुद्ध मान रही है और अपने पल्लू से मेरे पाँव पौंछ रही है। थोड़ी देर बाद जब बस झटके से रुकी तो चप्पल सहित उसका पैर नसरुद्दीन के पैर पर लगा, तो पत्नी जो अभी तक चुप थी, बोली, सावधान, अभी तक तो बुद्ध मान रही थी, पर अब बुद्धू मान रही है, आपकी असलियत पहचान गई है।

भगवान के सूत्र यही संदेश दे रहे हैं कि व्यक्ति वैचारिक रूप से स्वयं को पवित्र करें और कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या में प्रवेश करते हुए बिल्कुल शुक्ल रूप में अपने आपको अवतरित करे।

कल हमने कृष्ण लेश्या के बारे में संवाद किया था, आज नील लेश्या के संबंध में चर्चा करेंगे। सूत्र है—

मंदो बुद्धिविहीणो, विव्विणाणी य विसयलोलो य।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णील लेसस्स।।

भगवान कहते हैं, 'मंदता, बुद्धिहीनता, अज्ञानता और विषय-लोलुपता— ये नील लेश्या के लक्षण हैं।

हर व्यक्ति के विचारों के स्तर से व्यक्ति का जीवन प्रभावित होता है। यहाँ तक कि आसपास का वातावरण, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी भी प्रभावित होते हैं। आप पेड़ों के पास, फूलों के पास आनन्द से भरकर जाएँ तो उनमें भी प्रसन्नता का स्फुरण होगा। पश्चिम में पौधों के ग्राफ बनाए गए तो पता चला कि जब कुल्हाड़ी लेकर काटने के भाव से पौधों के पास जाते हैं तो वे सिकुड़ जाते हैं। अभी तो कुल्हाड़ी चली ही नहीं है, काटने का केवल विचार आया है और पौधे का ग्राफ बदल गया। भगवान कहते हैं कि व्यक्ति अपनी मंदता और बुद्धिहीनता से ऊपर उठे और अपने 'अज्ञान' को पहचाने और अपनी 'विषय-लोलुपता' का त्याग करे।

जनक जब अष्टावक्र से आत्मज्ञान की चर्चा करते हैं तो अष्टावक्र कहते हैं, केवल आत्मज्ञान की चर्चा करने से मुक्ति उपलब्ध नहीं होती। अगर तुम सच में ही मुक्ति चाहते हो तो अपने भीतर रहने वाली विषय-वासनाओं को विष के समान त्याग दो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर कहते हैं, विषय-लोलुपता मनुष्य की नील लेश्या है। कुछ-न-कुछ हम माँग ही रहे हैं। हम बिना माँगे रहते ही नहीं और सहायता करते हैं तो पूरी उद्घोषणा के साथ। लेकिन भगवान कहते हैं धर्म करो तो अहंकार के लिये नहीं; दया करो तो दूसरे को पता नहीं चलना चाहिए। दान दो तो अहंकार का पोषण न हो। तुम देखते हो अगर किसी निर्माण कार्य के लिए तुमसे घर जाकर एक लाख रुपये माँगे जाएँ तो तुम हजार में ही टरका देते हो, लेकिन समाज के बीच जहाँ पच्चीस-पचास लोग इकट्ठे हों, तुम बढ़-चढ़कर बोलियाँ लगाते हो। क्यों? इससे तुम्हारा अहंकार पुष्ट होता है।

कुछ समय पहले मैं माउण्ट आबू में था। वहाँ मैंने देखा कि स्थान विशेष पर कुछ भिखारी बैठे रहते थे और आश्चर्य की बात कि वे केवल नव-विवाहित युगल से ही भीख माँगते थे। मैंने एक दिन एक भिखारी को बुलाया और पूछा कि यहाँ से इतने लोग निकलते हैं, वृद्ध-वृद्धाएँ ये तो अधिक धर्मात्मा होते हैं, तुम उनसे भीख नहीं माँगते, नये जोड़ों की तलाश ही करते रहते हो। भिखारी ने कहा कि यह पति के अहंकार की बात है। नई-नई पत्नी साथ में होती है उसके सामने चवन्नी देकर हीन नहीं होना चाहता, बस दिखावे के लिए झट से पाँच का नोट निकाल देता है।

भिखारी भी जानता है, कौन देगा, कौन नहीं देगा। देखो, कहीं तुम्हारे भीतर मंदता तो नहीं है। परमात्मा के द्वारा दी गई समस्त चैतन्य-शक्तियाँ असाधारण हैं, लेकिन मनुष्य अपनी शक्ति को, अपनी चैतन्य-ऊर्जा को पहचान नहीं पाता और मंद बुद्धि बना रहता है। काला पर्दा तो हट गया लेकिन नीला परदा आ गया। अहंकार मंदता का लक्षण है।

बादशाह अकबर ने राजसभा में एक रेखा, लकीर खींची और अपने सभासदों से कहा इसे बिना छुए छोटी कर दो। मंदता में रहे सभासद कोई बुद्धि न जगा पाए। इतने में बीरबल खड़ा हुआ, सभी सभासद हँसने लगे कि बिना छुए कैसे छोटी करेगा। बीरबल आगे बढ़ा, उस रेखा के नीचे एक बड़ी रेखा खींच दी और कहा कि देखो बिना छुए ऊपर की रेखा छोटी हो गई।

मंदता से ऊपर उठा हुआ व्यक्ति ही अपनी आंतरिक ज्ञानशक्ति को पहचान पाता है। आत्म-जागरण के लिए की जाने वाली आत्म-साधना ही लेश्याओं का क्रमिक विकास करती है। इसलिए बुद्धिहीनता त्यागें। कुछ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वाध्याय करें, अपनी बुद्धि का उपयोग करें। अच्छे और बुरे का निर्णय स्व-विवेक और स्व-बुद्धि से करें कि हमारे जीवन के लिए कौनसा मार्ग श्रेयस्कर है, कल्याणकर है और अटूट विश्वास के साथ उस मार्ग पर चल पड़ो। तुम इधर-उधर भटककर कुछ भी न पा सकोगे। बुद्धिमान आदमी अर्थहीन वस्तुओं में शक्ति व्यय नहीं करता। वह अपनी शक्ति चैतन्य की जागृति में, विकास में लगाता है।

एक व्यक्ति ने भू-जल पाने के लिए अपने खेत में कुएँ की खुदाई शुरू की। बीस फुट खोदा होगा, लेकिन पानी न आया, सोचा कि दूसरी जगह खुदाई शुरू करूँ, वहाँ भी बीस फुट गहरा गड्ढा खोदा, लेकिन पानी न निकला। इस तरह उसने दस गड्ढे बना लिए, मगर पानी न निकला। वह हताश होकर बैठ गया। अचानक एक व्यक्ति आया और पूछा, उदास क्यों हो। उसने कहा, बीस-बीस फुट के दस गड्ढे खोद लिए लेकिन पानी नहीं निकला। आगन्तुक ने कहा, अगर दस जगह खोदने के बजाय एक जगह ही खोदते चले जाते तो पानी निकल गया होता। यही वृत्ति चलती है धर्म के मार्ग में भी। व्यक्ति धर्म के मार्ग में भी व्यावसायिक बुद्धि रखता है। एक देव से न मिला, तो दूसरे को पकड़ लेते हो—भगवान कहते हैं यह बुद्धिहीनता है। बौद्धिक शक्तियों का उपयोग करो और बुद्धिमत्ता से अपने जीवन का निर्णय करो और आगे बढ़ो।

महावीर नील लेश्या का अगला लक्षण बताते हैं 'अज्ञान'। ज्ञानी अहंकार नहीं करेगा, क्रोध नहीं करेगा। अज्ञानी ही अहंकार और क्रोध करेगा। व्यक्ति अज्ञानी है, क्योंकि वह अपने अज्ञान को स्वीकार नहीं करता। वह मान बैठा है कि उसे सबकुछ पता है। लेकिन जिसे ज्ञान की तरफ जाना है, उसे मानना पड़ेगा कि वह अज्ञानी है। तभी विराट का द्वार खुलेगा। अज्ञान किसी की नियति नहीं है। अभी तुमने अभ्यास नहीं किया, श्रम नहीं किया, इसलिए अज्ञान तुम्हें घेरे हुए है। जब तुम्हें बोध होगा, होश आएगा तब तुम जानोगे कि स्वयं जैसा अज्ञानी कोई नहीं।

विषयों के प्रति आसक्ति भी नील लेश्या का लक्षण है। निरंतर विषयों के सम्बन्ध में विचार करना, अपनी वृत्तियों को विषय-वासना से ग्रस्त रखना पतन की ओर जाना है। कहते हैं कि कौए को रात में दिखाई नहीं देता और उल्लू को दिन में कुछ भी नजर नहीं आता, लेकिन विषय-वासना में रत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदमी को न रात में दिखाई देता है और न दिन में। उसके जीवन में ऐसी अंधता आ जाती है कि वह दूसरा कुछ देख ही नहीं पाता। यह मन की गहन कमजोरी का परिणाम है कि वह विषय-वासना में लिप्त रहता है। भगवान कहते हैं ऐसा व्यक्ति नील लेश्या से युक्त है। जो मंदता, बुद्धिहीनता, अज्ञान तथा विषय-लोलुपता से मुक्त हो जाता है, वह कापोल लेश्या में प्रविष्ट हो जाता है। कापोत लेश्या-युक्त व्यक्ति के लक्षण भगवान बताते हैं-

रूसई णिंदई अन्ने, दूसई बहुसोय सोयभयबहुलो।
णगणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स।।

जल्दी रुष्ट हो जाना, दूसरों की निंदा करना, दोष लगाना, अति शोकाकुल होना और अत्यन्त भयभीत होना, ये कापोत लेश्या के लक्षण हैं।

तुमने कभी सोचा है कि कैसी छोटी-छोटी बातों पर तुम रूठ जाते हो। पत्नी को चाय लाने में पाँच मिनट की देरी हो गई, बस तुम रुष्ट हो गए। और ऐसे रुष्ट का रोष शायद दिन भर रहे। अगर गौर करो तो तुम पाओगे कि रूठने का कोई कारण न था। जो व्यर्थ की बातें हैं उनके कारण हम रुष्ट हो जाते हैं। कोई आदमी हमें देखकर हँस दे, हम रुष्ट हो जाते हैं। भगवान कहते हैं कि यह कापोत लेश्या का पहला लक्षण है।

दूसरा लक्षण है, 'दूसरों की निंदा'। व्यक्ति का निंदा में गहरा रस है। वह बात करने के बहाने से दूसरों की निंदा में संलग्न हो जाता है। शायद पकवानों में भी वह रस और स्वाद नहीं होता, जो चटपटापन निंदा करने में है। भगवान कहते हैं, इससे तू अनंत कर्म का बंधन कर रहा है। स्वयं को देख और इस लोक-जंजाल से स्वयं को सँभाल। दूसरों के जंजाल छोड़ और अपनी सुलझा।

निज मां वश, पर थी खस, एटलुं बस।

स्वयं में लौट आना ही जीवन का चरम अध्याय है। दूसरों की निंदा कर व्यक्ति स्वयं को कलुषित ही बनाता है।

भगवान कापोत लेश्या का तीसरा लक्षण बताते हैं—'दोष लगाना'। इस विद्या में तो प्रायः सभी माहिर होते हैं। जिस बात का पता नहीं है, जिसके बारे में कुछ भी जानते नहीं हैं फिर भी लोग दोष लगाने से चूकते नहीं। उनकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदत ही बन जाती है दोषारोपण करना। गलत काम खुद करेंगे, लेकिन नाम लगाएँगे दूसरों का। उनकी वैचारिक प्रक्रिया, उनकी जीवन पद्धति कापोत लेश्या की हो जाती है। लकड़ी के ऊपर कितने भी सोने-चाँदी के पत्तर चढ़ा दो, जब उतारोगे उतर जाएँगे, लकड़ी तो वही रहेगी।

'अतिशोकाकुल रहना' कापोत लेश्या का अगला लक्षण है। हमारा जिस-जिस के प्रति राग होता है; फिर चाहे वह जड़ हो या चेतन, उससे हमारा शोक जुड़ा रहता है। किसी वस्तु या व्यक्ति से तुम्हें अत्यधिक लगाव हो तो उसके न रहने पर तुम्हें शोक होता है। सोचो, तुम्हें किस बात का शोक है उसके न रहने का या तुम्हारे राग के टूट जाने का। तुम्हें शोक होता है अपने स्वार्थों के कारण। तुम अखबार में रोज ही खबरें पढ़ते हो अमुक स्थान पर भूकम्प से हजारों लोग मारे गए, किसी ने दूसरे की हत्या कर दी, और भी कितनी ऐसी खबरें, तब क्या तुम्हें शोक होता है ? अपने आपको टटोलें।

कापोत लेश्या का अंतिम लक्षण है—'अत्यंत भयभीत होना'। जीवन से साहस के साथ जुड़े रहो। मृत्यु से मत डरो, क्योंकि किसी की मृत्यु दो बार नहीं होती है। तुमसे कोई कह दे कि तुम आज शाम को मर जाओगे, चाहे न भी मरने वाले हो, लेकिन भय तुम्हें समाप्त कर देगा। भयभीत सभी हैं। तुम जीवन की सच्चाई से भयभीत हो। तुम जानते हो गहरे में कि जो होने वाला है वह होगा फिर भी डर से काँप रहे हो । भगवान कहते हैं—अभय। जो नहीं होने वाला है, वह नहीं होगा, उसका भय क्या करना ! और जो होने वाला है, वह होगा, उसका कैसा भय करना ! इसलिए भय के चलते जो भगवान की पूजा करते हैं वे धर्म में प्रविष्ट नहीं हो सकते।

भगवान कहते हैं अत्यन्त भयभीत न रहो, अतिशोक न करो, निंदा में रस न लो और रुष्ट मत बनो। यह संसार, जिसे हमने जाना है ऐसे परदों से निर्मित है कि जिन्हें हटाना ही होगा। उनके पार ही धर्म का राज्य है।

अब तक हमने जो तीन लेश्याएँ ली हैं, वे दूषित तो हैं ही साथ ही साथ उनकी सतहें और परदे मोटे हैं। अब हम भीतर की जिस दहलीज पर अपने कदम बढ़ा रहे हैं वे क्रमशः सुनहरे और उज्ज्वल हैं। परदे तो हैं लेकिन 'झीणी-झीणी बीनी रे चदरिया' पतले हैं, पारदर्शी हैं। कृष्ण, नील और कापोत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये तीन अशुभ लेश्याएँ रहीं। लेश्या यानि भाव-दशा, विचार-दशा। अब हम शुभ की ओर गतिशील होते हैं। क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इस बात की सजगता रखना ही तेजस् लेश्या है। श्रेय और अश्रेय का भलीभांति विवेक रखना ही तेजस् लेश्या का अगला लक्षण है। यदि हम सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं, दया, दान, करुणा, सहभागिता में निष्ठा रखते हैं तो समझ लें कि हम अशुभ से शुभ की ओर कदम बढ़ा चुके हैं और आपके चित की दशा तेजस लेश्या की है। भगवान का सूत्र है—

जाणइ कज्जाकज्जं, सेयम सेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू, लक्खणमेयं तु तेउस्स।।

कार्य-अकार्य का ज्ञान, श्रेय-अश्रेय का विवेक, सबके प्रति समभाव, दया-दान में प्रवृत्ति—ये तेजोलेश्या के लक्षण हैं।

तेजस् लेश्या का पहला लक्षण है—कार्य-अकार्य का ज्ञान। कार्य तो मानवीय जीवन में हर समय सम्पादित करने ही होते हैं। लेकिन यदि हम किसी भी कार्य को ज्ञान और समझ पूर्वक करते हैं तो वही कार्य हमारे लिए मुक्ति का द्वार बन जाता है। प्रसिद्ध कहावत है—वर्क इज वर्शिप। कार्य ही प्रार्थना है। आप कार्य कोई भी करें, लेकिन करने से पहले इनकी सजगता जरूर बरत लें कि मैं वही कार्य करूँ जिससे मेरा भी हित हो और औरों का भी। आत्म-मंगल और लोक-मंगल दोनों का ख्याल रखना ही तेजस् लेश्या का मालिक होना है।

इसी तरह यह ध्यान रखें कि हम जो भी कार्य करें वह श्रेयस्कर हो। अश्रेयस्कर कार्यों को करना बिल्कुल वैसे ही है जैसे वस्त्र को स्याही से खराब करके फिर उसको धोने की चेष्टा करना है। भगवान सबके प्रति समभाव रखने की प्रेरणा इसलिए दे रहे हैं ताकि मानवता के प्रति हमारा रवैया संकीर्ण न हो। रंग-रूप-जाति-धन आदि के आधार पर मानव के साथ अमानवीय व्यवहार करना एक मानव के लिए कतई शोभनीय नहीं है। गांधी ने कहा, 'अस्पृश्यता अभिशाप है।' समग्र मानवता से प्रेम होने के कारण ही महावीर और बुद्ध ने अपने धर्म संघ में छोटी कहलाने वाली जातियों के भी लोगों को अपनी धर्म-दीक्षा प्रदान की थी। दया दान में जितनी अधिक हमारी प्रवृत्ति रहेगी, हम मानवता की सेवा का उतना ही अधिक सुख और सुकून पा सकेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेजस् लेश्या के बाद में पद्म लेश्या। नाम से ही स्पष्ट है, पद्म यानि कमल। जैसे कमल जलाशय में रहकर भी उससे निर्लिप्त रहता है, मनुष्य को भी संसार के जलाशय में वैसे ही रहना होता है। सबके साथ फिर भी किसी के साथ नहीं। पद्म लेश्या के लक्षण बताते हुए भगवान कहते हैं कि त्यागशीलता, परिणामों के भद्रता, व्यवहार में प्रामाणिकता, कार्य में ऋजुता, अपराधियों के प्रति क्षमाशीलता, साधु और गुरुजनों की पूजा सेवा में तत्परता—ये ही हैं पद्म लेश्या के लक्षण।

चागी भद्दो चोक्खो, अज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो, लक्खणमेय तु पम्मस्स।।

भगवान कहते हैं जीवन में हो त्याग, भावों में हो भद्रता, व्यवहार और व्यवसाय में हो ईमान और इनके अलावा हों, सरलता, सेवा और क्षमा की सौहार्दता। अगर हमें पद्म लेश्या की ओर अपने कदम बढ़ाने हैं तो हमें इन गुणों को अपनाना होगा। धर्म और उसकी बातें केवल सुनने के लिए नहीं होती। आखिर कोई भी प्रयोग परिणाम तभी देता है जब कोई उस प्रयोग से गुजरे। पद्म लेश्या एक प्रकार से व्यक्ति की धर्म लेश्या है और धर्म धारण करने की चीज है। जीवन में कमल जैसी हो निर्लिप्तता, जीवन में कमल जैसी हो सौम्यता, सुन्दरता और सुरम्यता। जीवन स्वयं फूल बन जाये पद्म लेश्या की यही प्रेरणा है।

अन्तिम लेश्या है शुक्ल लेश्या। शुक्ल लेश्या यानि रास्ता पूरा पार हो गया। मंजिल की देहरी पर हमारे पाँव रखे जा चुके हैं। खोलना बाकी है केवल वह द्वार जो हमें मुक्ति महल के भीतर तक ले जाए। पक्षपात न करना, भोगों का निदान न करना, सबमें सर्वतोभावेन समदर्शी रहना, राग-द्वेष की हर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म उठापटक से भी मुक्त रहना, यही सब होते हैं शुक्ल लेश्या के लक्षण। कृष्ण लेश्या मानव मन की कमजोरी है किन्तु शुक्ल लेश्या मन का संस्कार है। अब तक कपड़ा मैला था, तेजस्, पद्म और शुक्ल लेश्या के साबुन का उपयोग करते हुए हमने कपड़े को धोया, उजला किया, उपयोग किया, आनन्द लिया, मुक्ति की ओर अपने कदम बढ़ाते हुए कबीर कहते हैं—'ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया, झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया, जो साथ चलना है वह साथ हो लिया और जो छूट जाना है, आखिर छूट ही गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमस् छूट गया, प्रकाश उपलब्ध हो गया। उसी को कहते हैं कैवल्य अवस्था, सिद्ध-बुद्ध-मुक्त अवस्था।

'जिन खोजां तिन पाइयां गहरे पानी पैठ'। उबरता वही है जो पानी में उतरता है, पाता वही है जो डुबकी लगाता है। बस, चाहिए भावों में भद्रता, श्रेय के प्रति सजगता और जीवन में सरलता। जो समझ सके, उसके लिए इतना पर्याप्त है।

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परमात्म-साक्षात्कार की पहल

जीवन में जिसने स्वयं के चिराग को जला लिया, उसे बाह्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक दीपक जिसमें लौ सतत जगमगा रही है उसे किसी अन्य रोशनी से देखने की जरूरत नहीं होती। उसका प्रकाश ही उसके होने का संकेत है। ठीक ऐसे ही आत्मा भी स्व-प्रकाशमान है, उसे अन्य बाह्य प्रकाश की जरूरत नहीं होती। लेकिन जब जगमगाते दीपक को किसी पात्र से ढक दिया जाता है तो समष्टि में फैलने वाला प्रकाश एक छोटे-से पात्र में सिमटकर रह जाता है।

व्यक्ति की चेतना प्रकाशमय है, लेकिन वह बाहर प्रकाश की तलाश में भटक रहा है। उसकी चेतना सत्यमय है, फिर भी वह सत्य की तलाश में घूमता रहता है। उसकी आत्मा परमात्मामय है फिर भी किसी परमात्मा को बाहर ढूँढ़ रहा है। तुम् परमात्मा की तलाश में तीर्थ करते हो। मंदिर जाते हो, बाहर जिसे खोज रहे हो वह तो तुम्हारे अंतर्घट में सदा से है। काश, तुम थोड़ा ठहरते और भीतर स्वयं के अंदर उतर पाते। तुम्हारी हालत है—

'कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़े वन मांहिं'

बिल्कुल इसी तरह तुम न जाने कहाँ-कहाँ खोज रहे हो। जैसे दूध में मक्खन निहित है, फूल में सुवास छिपी है, वैसे ही मनुष्य के अन्तर्-प्राणों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में वह दिव्य चेतना समाहित है। जब तुम कहते हो परमात्मा घट-घटवासी या आत्मा का मूल स्वभाव है, तो फिर उसकी तलाश क्यों ? उसकी खोज क्यों ? यह तो ऐसा ही हुआ कि बच्चा तो बगल में है और शहर भर में ढूँढ़ रहे हो। तुम्हारी परमात्मा की खोज भी ऐसी ही है।

एक बार ऐसा ही हुआ, सूफी संत राबिया अपने घर के बाहर सुई ढूँढ़ रही थी। इधर-उधर खूब ढूँढ़ा, पर सुई न मिली। हमारे यहाँ जैसे मीरां और सहजो हैं, वैसे ही सूफी-परम्परा में राबिया भी एक उच्चकोटि की संत थी। अन्य लोग उससे सीखने आया करते थे। उसका जीवन बोलता था, वह मुँह से बहुत अधिक बातें नहीं करती थी। मुँह से तो अधिक बोलते हैं, जो जीवन में आचरण नहीं कर पाते।

उधर से कुछ फकीर गुजर रहे थे। उन्होंने राबिया को कुछ ढूँढ़ते हुए देखा तो पूछ ही लिया, 'राबिया क्या खो गया है, जो ढूँढ़ रही हो ?' राबिया ने कहा, 'सुई ढूँढ़ रही हूँ।' फकीरों ने सोचा कि अकेली कैसे ढूँढ़ पाएगी। एक तो वृद्ध, दूसरे साँझ भी ढलने आ रही है। चलो, हम भी उसकी सहायता कर देते हैं। वे भी कुटिया के बाहर सुई ढूँढ़ने लग गए, पर सुई थी कि मिली ही नहीं। कोई आधा घंटा बीत गया होगा कि एक फकीर ने पूछा, 'राबिया, तुम्हारी सुई कहाँ खोई थी ?' राबिया ने कहा, 'सुई तो कुटिया में ही खोई थी।' फकीरों ने कहा, 'जब सुई कुटिया में खोई तो बाहर क्यों ढूँढ़ रही हो?'

राबिया ने कहा, 'कुटिया में अंधेरा है, शाम हो रही है, सूरज ढल रहा है, तो वहाँ मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, इसलिए सोचा जहाँ प्रकाश है वहीं ढूँढ़ लूँ।'

फकीरों ने कहा, 'राबिया, हम तो तुम्हें ज्ञानी समझते थे, लेकिन लगता है, बुढ़ापे में तुम्हारी बुद्धि सठिया गई है, वरना सुई बाहर नहीं ढूँढ़ती। अरे, जहाँ सुई खोई ही नहीं है वहाँ चाहे प्रकाश हो या न हो सुई तो नहीं मिलेगी।'

राबिया हँसी और कहा, 'वही तो मैं तुमसे कहना चाहती हूँ। तुम खुदा की खोज में कभी मक्का, कभी मदीना जाते हो, लेकिन मैं यही कहना चाहती हूँ कि जो भीतर विद्यमान है, उसे बाहर क्यों तलाश रहे हो ?'

अरे मनुष्यो, तुम अंधकार में जीवन जीने के इतने अभ्यस्त हो गए हो कि प्रकाश की बौछार में चकाचौंध हो जाते हो। तुमने जन्मों-जन्मों से अँधेरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के साथ संबंध बनाए हैं। अँधेरा ही तुम्हारा स्वभाव बन गया है। अँधेरा तुम्हें सहज ही आकर्षित भी कर लेता है। एक तो हमें रोशनी दिखाई नहीं पड़ती और अगर दिखाई पड़ जाए तो बहुत डर लगता है। व्यक्ति संसार का इतना आदी है कि समाधि का मार्ग मिल भी जाए तो चलने को तैयार नहीं। वह अपने ही बनाए वासनाओं के, कामनाओं के जाल में उलझकर रह गया है।

महावीर, बुद्ध, जीसस, सुकरात ने मनुष्य को दिव्य प्रकाश दिखाया, लेकिन उनके साथ क्या सलूक किया गया ? उनका क्या अपराध था कि उन लोगों के साथ दुर्व्यवहार किया गया ? एकमात्र यही न कि तुम अँधेरे में थे और उन्होंने प्रकाश की झलक दिखाई। अंधे, अभिशप्त गलियारों में भटकती मानवता प्रकाश को सहन करने की क्षमता खोती जा रही है। नयेपन का बोध अनजान होने की आशंका डरा देती है।

इसलिए हम तो बँधी-बँधाई लकीरों में जीते हैं, कोल्हू के बैल की तरह। कोल्हू का बैल चलता बहुत है, दिन भर चलता है, पर पहुँचता कहीं भी नहीं है। जो वर्तुलाकार घूमेगा वह पहुँचेगा कैसे ! हम जीवन को चक्र कहते हैं। गाड़ी के चाक की भाँति जीवन घूमता रहता है। कभी नीचे का पहिया ऊपर और कभी ऊपर का पहिया नीचे, लेकिन फर्क कुछ नहीं पड़ता। कभी क्रोध ऊपर आता है, कभी मोह ऊपर आता है, कभी प्रेम दिखाई दे जाता है, कभी घृणा आ जाती है, कभी ईर्ष्या से भरे, कभी अपार करुणा छा गई, कभी बादल घिरे, कभी सूरज निकला—बस ऐसे ही धूप-छाँव चलती रहती है। लेकिन हम वहीं हैं जहाँ हम थे।

आइन्स्टीन जब मृत्यु-शैय्या पर थे, उनके आसपास अनेक वैज्ञानिक और पत्रकार एकत्र थे। मृत्यु-शैय्या पर पड़े आइन्स्टीन से एक पत्रकार ने पूछा, 'तुम मरने के बाद क्या बनना चाहते हो ?' आइन्स्टीन का उत्तर सोई चेतना को जगाने वाला और सभी को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करने वाला था। उस महान वैज्ञानिक ने कहा, 'मैं नहीं जानता कि पुनर्जन्म होता है या नहीं। अगर होता हो तो वैज्ञानिक नहीं बनना चाहूँगा। पत्रकार ने कारण पूछा तो आइन्स्टीन ने कहा, 'मैंने बहुत से आविष्कार किए, लेकिन मैं उस तत्त्व को नहीं खोज पाया जिसके इस शरीर से निकल जाने के बाद मुझे दफना दिया जाएगा।' काश, हम जो दूसरी खोजों में व्यस्त हैं एक बार भी अपनी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओर देख पाते तो शायद उस तत्त्व को पा लेते जिसको पाने के बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता। भगवान कहते हैं 'जे एगं जाणइ ते सव्वं जाणई।' जो एक को जान लेता है वह सारे अस्तित्व को जान लेता है। सर्वज्ञ का अर्थ जानते हैं आप ? आप तो सर्वज्ञ का अर्थ समझते हैं कि जो अतीत और भविष्य को जानता है, लोक और परलोक को जानता है। हकीकत में जो स्व का ज्ञाता है, वही सर्वज्ञ है। जो चेतना का ज्ञाता है, जिसे आत्म-बोध हो चुका है, वही सर्वज्ञ। लेकिन मनुष्य अंधकार में जीने का आदी हो चुका है।

ताब मंजिल रास्ते में मंजिलें थीं सैंकड़ों।
हर कदम पर एक मंजिल थी, पर मंजिल न थी।

श्री अरविंद ने कहा है, 'जब खोजता था तब जिसे मैंने दिन समझा था, प्रकाश समझा था—वह खोजने के बाद अँधेरा निकला, रात मिली। जिसे मैंने जीवन जाना था वह मृत्यु सिद्ध हुई, जो अमृत समझकर पी रहा था, वह जहर था।' हम मील के पत्थर को ही मंजिल समझ लेते हैं, लेकिन खोजने पर रास्ता बहुत दूर तक चला जाता है और लौटकर वहीं आ जाता है। तुम कोल्हू के बैल की तरह वर्तुलाकार घूमते रहते हो, सुबह से शाम तक और पहुँचते कहीं नहीं हो।

आज के सूत्रों में भगवान संदेश दे रहे हैं कि व्यक्ति बहिरात्मा से मुक्त हो जाए, परमात्मा में लीन हो जाए। महावीर उस परम जीवन की ओर इशारा कर रहे हैं, जिसकी कोई व्याख्या नहीं है, परिभाषा भी नहीं है; यह सिर्फ वर्णन है। परम सत्य की कोई व्याख्या नहीं हो सकती; क्योंकि व्याख्या उसी की हो सकती है जिसका विश्लेषण हो सके, जिसे तोड़ा जा सके, खंडों में बाँटा जा सके। अनुभूति की व्याख्या नहीं होती। इसे तो अन्तरात्मा में उतरकर ही पाया जा सकता है।

विज्ञान और धर्म दोनों प्रयोगशालाएँ हैं। विज्ञान बाहर की और धर्म भीतर की प्रयोगशाला है। विज्ञान में जड़ पदार्थ, पुद्गलों की खोज की जाती है और धर्म में चेतन तत्त्व की, सत्य की खोज की जाती है। सत्य की चर्चा नहीं की जा सकती, सत्य तो है। दो से जो मिलकर बनता है उसकी व्याख्या हो सकती है। लेकिन जहाँ एक ही स्वभाव हो, अखंड, वह कथन के परे हो जाता है। मकान की व्याख्या हो सकती है कि यह ईंट, पत्थर, सीमेन्ट, रेत,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चूना आदि से मिलकर बना है। इसमें दरवाजे, खिड़की हैं, इसकी सजावट की गई है। इधर-उधर पड़ोस में लोग रहते हैं। रास्ता इधर-उधर नहीं है। कुछ सीमा हो सकती है। जहाँ सीमा होगी, वहाँ व्याख्या होगी, परिभाषा होगी। लेकिन आप मकान की छत पर हों और कोई पूछे कि आकाश की क्या परिभाषा है, तो आप आकाश को परिभाषित नहीं कर पाओगे। शून्य को शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते—

'पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।'

याज्ञवल्क्य के पास एक युवक पहुँचा और पूछा, 'अस्तित्व में कितने देवी-देवता हैं ?' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'तैंतीस करोड़।' युवक अचंभे में पड़ गया—'तैंतीस करोड़, अरे इतनों की तो अँगूठे की पूजा भी न हो पाएगी। कुछ और खास चुनकर बता दें, ऋषिवर !' 'तब तो तैंतीस लाख देव ऐसे हैं जो खास हैं', याज्ञवल्क्य ने कहा। 'तैंतीस लाख की पूजा भी न कर पाऊँगा।' युवक ने असमर्थता जताई। 'चलो, तैंतीस हजार चुनकर दे देता हूँ', ऋषि बोले। 'तैंतीस हजार भी अधिक ही है।'

'तीन सौ तैंतीस ?'

'ये भी अधिक ही हैं कब-कब किसको अर्घ्य दे पाऊँगा ? कुछ और कम करो।' युवक ने कहा।

'मैं, तुम्हें तीन देवों के नाम बता देता हूँ जो परम श्रेष्ठ हैं, तू उन्हीं की उपासना कर ले।' याज्ञवल्क्य ने उपाय दिया।

'तीन ? आप तो एक ही नाम बता दें। तीन की पूजा में कभी कोई छूट गया तो वह रूठ जाएगा, उसको मनाऊँगा तो दूसरा रूठ जाएगा, आप तो बस केवल एक ही देव का नाम बता दें', युवक ने कहा। तब याज्ञवल्क्य ने कहा, 'देव तो तेतीस करोड़ हैं लेकिन इनके ऊपर इनसे श्रेष्ठ जो देव है वह है आत्मदेव, जा तू उसी की उपासना कर, उसी को खोज, उसी में लीन हो। जो आत्मतत्त्व तक पहुँचता है वही परमात्मा तक पहुँच पाता है।

आज के सूत्र अंधकार में भटकती हुई चेतना के लिए प्रकाश की किरण हैं। आज के सूत्र शब्द नहीं हैं, न ही परिभाषा हैं। ये सूत्र वर्णन के सूत्र हैं, एक-एक शब्द अनमोल है, क्योंकि तुम्हें मार्ग दिखाया जा रहा है, ताकि तुम सत्य की प्रयोगशाला में खड़े हो सको, सत्य का साक्षात्कार कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सको। ये शब्द बहुमूल्य हैं अगर तुम इनका अनुसरण कर सको। इन्हें फिर से जीवंत करने के लिए इन्हें दोहराना नहीं है वरन् इनमें उतरकर अनुभूति से गुजरना है। सूत्र है—

आरूहवि अंतरप्पा, बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं।।

जिनेश्वरदेव का कथन है कि मन, वचन और काया से बहिरात्मपन के सभी संयोगों का त्याग कर, अंतरात्मा में विचरण कर, परमात्मा का ध्यान करो।

तीन शब्द हैं बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। इन्हें समझें। जो बाहर के संसार से जुड़ी है वह बहिरात्मा है। जो संसार से, पुद्गल से जुड़ा है वह बाहर ही देख रहा है। उसका रस विषय-वासना और कषाय में है। अंतरात्मा—जब ध्यान की यात्रा शुरू होती है भीतर की ओर। जब बाहर की निरर्थकता नजर आने लगती है और विवेक का जन्म होता है, तुम भीतर की ओर लौटने लगते हो। और परमात्मा—जब बाहर-भीतर दोनों खो गए। तुम वही हो, लेकिन तुम्हारी दिशा बदल जाती है। अभी तुम घर के बाहर जाते थे, अब घर की ओर वापस आने लगे, फिर आत्मलीन हो गए। स्वभाव उपलब्ध हो गया। स्वयं की ओर लौटोगे तो अपने स्वरूप को उपलब्ध हो जाओगे। स्वरूप में स्थिर होना ही स्वास्थ्य का सर्वोच्च रूप है। स्वस्थ यानी स्वयं में स्थित; परमात्मा की उपलब्धि, परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति।

आत्मतत्त्व में अनंत शक्ति है जिसके सम्मुख ब्रह्मांड की समस्त शक्तियाँ श्रीहीन हो जाती हैं। हमारी ऊर्जा जब ऊर्ध्वगमन करती है तो परमात्म-मिलन का सेतु बनती है और वही ऊर्जा अधोगामी होकर संसार की उठापटक का परिणाम देती है।

आज के सूत्र महत्त्वपूर्ण हैं, अगर इनमें स्वयं को डुबोओगे तो ये तुम्हारे लिए जीवंत हो जाएँगे। महावीर की साधना में मन, वचन और काया के तीन अवरोध हैं। काया—यह शरीर तो हमें दिखाई पड़ता है और इसको ही हम सबकुछ मान बैठे हैं। कहा जाता है कि जब सिकंदर विश्व-विजय के लिए निकला तो उसके गुरु ने कहा, 'भारत से तुम एक साधु लेकर आना।' अपनी विजय के मद में चूर जब सिकंदर भारत से जाने लगा तो अचानक गुरु के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वचन याद आ गए। उसने सैनिकों को भेजा किसी साधु को पकड़ लाने के लिए। सैनिक एक साधु के पास पहुँचे और सम्राट का हुक्म सुना दिया। साधु ने पूछा, 'कौन सिकंदर, कैसा सिकंदर, मैं किसी के पास नहीं जाता। उसे आना हो तो यहीं आए।' सैनिकों ने साधु की अक्खड़ता सिकंदर को बताई। सिकंदर हैरान हो गया। एक अदना-सा आदमी उसके हुक्म की तामील से इंकार करता है ! पर शायद अंदर से बेचैन भी हो गया कि उसमें ऐसी क्या खूबी है जो इतनी दिलेरी से सिकन्दर के हुक्म को नहीं मान रहा।

कहते हैं, स्वयं सिकन्दर उस साधु के पास पहुँचा और यूनान चलने का हुक्म दिया। हुक्म की तामील न करने पर सिर धड़ से अलग करने की धमकी दी। साधु ने कहा, 'यह शरीर तो कब का मर चुका है। हम आज अपने सिर को धड़ से अलग होता हुआ भी देख लेंगे।' और सिकंदर जवाब सुनकर हतप्रभ रह गया। वह ऐसी बात तो सपने में भी नहीं सोच सकता था कि एक जीवित इंसान यह कहे कि शरीर मर चुका है और सिर को धड़ से अलग होता हुआ देखेंगे। क्योंकि सिकंदर ने केवल बाह्य शरीर ही देखा और जाना था। उसे अन्तरात्मा का तो कोई ख्याल ही न था। आत्म-साधक के लिए शरीर तो महज केंचुली जितना ही मूल्यवान होता है। जिसके लिए यह बोध रहता है कि केंचुली, जिसे आखिर उतरना ही है।

साधारणतः लोग शरीर के तल पर जीते हैं। जो थोड़े से जागरूक होते हैं वे शरीर के बाहर, शरीर से ऊपर सोचना शुरू करते हैं। उन्हें दिखाई पड़ता है कि वे शरीर नहीं हैं, वे केवल विचारों में जीते हैं। विचार जब गहराई में उतर जाता है तब शरीर जुदा हो जाता है। खिलाड़ी मैदान में खेलता है, खेलते वक्त चोट लग जाती है, खून बहने लगता है, उसे पता ही नहीं चलता। दर्शक देख रहे हैं पर वह खेलने में तल्लीन रहता है। अभी सारा ध्यान दूसरी ओर है, शरीर से दूर। खेल बंद हो जाता है, वह अपने शरीर में लौटता है, तब पीड़ा-दर्द-खून का अहसास होता है। वह चकित होता है, इतनी देर मुझे पता क्यों नहीं चला !

तुम्हें भी बहुत बार ऐसे अनुभव होते होंगे। कभी ऐसा होता है कि तुम भूखे बैठे हो और विचारों में तल्लीन हो तो भूख का पता नहीं चलता या तुम कहीं बाहर से आए हो, शरीर थका हुआ है और तुम्हारा बेटा अचानक गिर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पड़ा; तुम आराम करने की सोच रहे थे, लेकिन अब ? अब शरीर में एकदम ऊर्जा आ जाती है, सारी थकान उतर जाती है, तुम भूल जाते हो कि तुम सफर से आए हो कि चार दिन से सोए नहीं हो। सब विस्मृत हो जाता है और तुम बेटे को लेकर अस्पताल चल देते हो। विचार जब सघन हो जाता है तब शरीर दूर हो जाता है और तब तुम्हारे शरीर का ऑपरेशन भी कर दिया जाए तो तुम्हें पता नहीं चलता।

भगवान कहते हैं—'बहिरप्पा छंडिउण तिविहेण'—मन, वचन, काया से, बहिरात्मपन से मुक्त हो जा। इसके उपरान्त 'आरूहवि अंतरप्पा' अंतरात्मा में आरोहण कर। परमात्मा का ध्यान तो बाद की बात है। पहले शरीर से, इसके राग से हटो और अन्तरात्मा में प्रवेश करो। जब अन्तरात्मा में लीनता होगी तभी परमात्मा का ध्यान कर पाओगे। बड़ा अनूठा सूत्र है जिसमें सारा योग समा गया है। महावीर कहते हैं कि शरीर के साथ, शब्दों के साथ, वचन के साथ संबंध शिथिल करो। फिर धीरे-धीरे मन के साथ। शरीर से ही शुरू करना होगा, तभी दिखाई देगा भीतर का—वचन का बंधन। शरीर से मुक्त होने पर वचन दिखाई पड़ेंगे। वचन भी हमारा सेतु है बाहर से। जब वचन से मुक्त होंगे तो आँखों की पारदर्शिता को मन का बंधन दिखाई पड़ेगा। मन के पार ही तो परमात्मा छिपा है। बाहर से भीतर जाना होगा, आत्मा के अंदर जिसमें परमात्मा का वास है।

शरीर व्यक्ति को बाहर से जोड़ता है। स्वभावतः शरीर माता-पिता से मिला है। तुम इसे लेकर नहीं आए हो। लेकिन गहराई में जाओगे तो पता चलेगा कि उन्होंने भी अपने माता-पिता से यह शरीर प्राप्त किया था। एक चक्र चलता रहता है, लेकिन अंत में यह प्रकृति पर जाकर ठहरता है। यह शरीर तो मिट्टी का है, जल का है, वायु का है, आकाश का है, पंचमहाभूतों का है, तुम्हारा नहीं है। बाहर के ये तत्त्व तुम्हें प्रभावित करते हैं। इसलिए जैसे-जैसे व्यक्ति अनुभव करता है कि मैं शरीर नहीं हूँ, वैसे-वैसे बाह्य तत्त्व उसे कम प्रभावित करते हैं। फिर पूर्णिमा की रात हो या अमावस की, सब बराबर हो जाती हैं। तब शरीर में तरंगें तो उठेंगी, लेकिन प्रभावित नहीं कर पाएँगी। तुम दूर खड़े द्रष्टा हो जाते हो।

लोग मेरे पास आते हैं और मन से मुक्त होने का उपाय पूछते हैं। मन से मुक्त होना है तो मन को देखना सीखो कि वह तुम्हें कहाँ-कहाँ ले जाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। विचारों ही विचारों में तुम न जाने कहाँ-कहाँ पहुँच जाते हो। मन तुम्हें सपने बुनना सिखाता है। लेकिन जैसे ही यह बोध हो जाए कि मन ने तुम्हें जाल में उलझा रखा है, तुम मन के प्रति जाग्रत हो जाते हो। जाग्रत होते ही मन गिरने लगता है। मन से बल नहीं मिलता। वह तुम्हारा भ्रम होता है कि जो तुम पाते हो कि मन ने दिया। यह शरीर तो मिट्टी से बना है, इससे तो पार होना ही है। यह मन तो शरीर और वाणी का कोषागार है—इससे भी मुक्त होना है। जब मन से मुक्ति होगी तब अंतर के आकाश की सीमा शुरू होगी और जब आकाश से भी आगे निकल जाएँ—वहीं परमात्मा है।

भगवान कहते हैं, 'बहिरात्मपन को छोड़कर अंतरात्मा में आरोहण कर परमात्मा का ध्यान करो।' मर्म समझ लें, साधना के पथ पर आगे बढ़ने में सहयोगी होगा। यह सूत्र अपने आप में साधना का सम्पूर्ण पथ लिए हुए है। बहिरात्म-भाव से उपरत होना साधना का पहला चरण है। अन्तरात्मा में निमज्जित होना दूसरा चरण है और परमात्मा के ध्यान में, उसकी सम्यक् स्मृति में लीन होना साधना का तीसरा और अन्तिम सोपान है। आप सब इस मार्ग पर चलें, चलने में सक्षम हों, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ !

❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेहतरीन किताबें

रॉयल साइज, रॉयल मैटर

रॉयल प्रजेंटेशन

किताबों की कीमत लागत से भी कम

जीने की कला (रॉयल साइज)
पृष्ठ : 196 मूल्य : 70/-

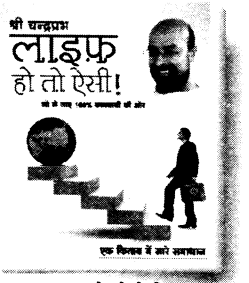

लाइफ हो तो ऐसी !
पृष्ठ : 144 मूल्य : 50/-

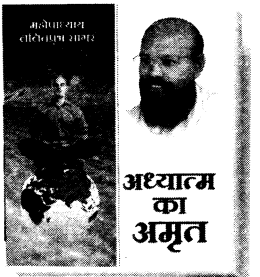

अध्यात्म का अमृत
पृष्ठ : 144 मूल्य : 50/-

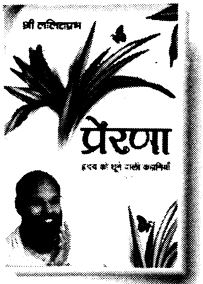

प्रेरणा
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-

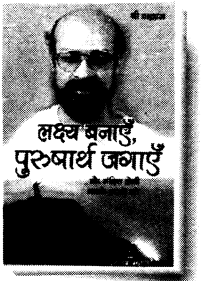

लक्ष्य बनाएँ, पुरुषार्थ जगाएँ
पृष्ठ :128 मूल्य : 40/-

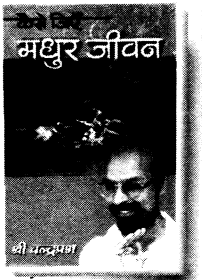

कैसे जिएँ मधुर जीवन
पृष्ठ :112 मूल्य : 25/-

योग अनाएँ, ज़िंदगी बनाएँ
पृष्ठ :108 मूल्य : 25/-

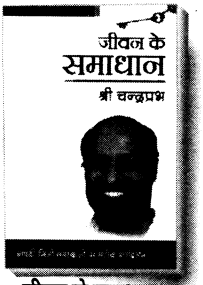

जीवन के समाधान
पृष्ठ :160 मूल्य : 80/-

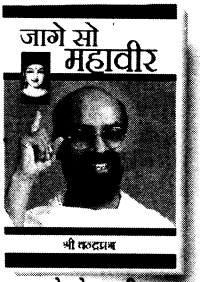

जागे सो महावीर
पृष्ठ : 192 मूल्य : 40/-

जरा मेरी आँखों से देखो
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-

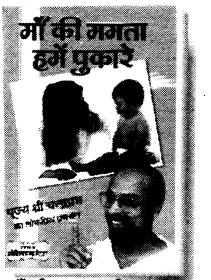

माँ की ममता हमें पुकारे
पृष्ठ : 32 मूल्य : 8/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मृत्यु से मुलाकात
पृष्ठ : 200 मूल्य : 50/–

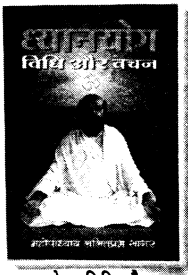

ध्यानयोग : विधि और वचन
पृष्ठ :160 मूल्य : 40/–

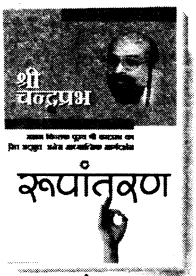

रूपांतरण
पृष्ठ :160 मूल्य : 25/–

मैं कौन हूँ
पृष्ठ :112 मूल्य : 25/–

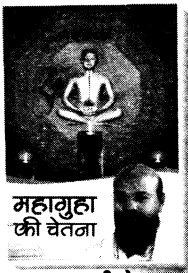

महागुहा की चेतना
पृष्ठ : 192 मूल्य : 40/–

बजाएँ अन्तर्मन का इकतारा
पृष्ठ : 192 मूल्य : 40/–

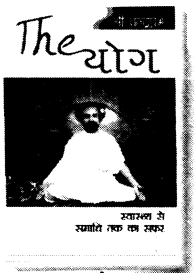

द योग
पृष्ठ : 192 मूल्य : 40/–

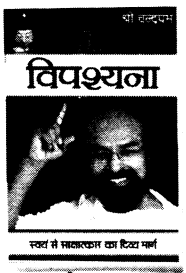

द विपश्यना
पृष्ठ :160 मूल्य : 30/–

आत्मा की प्यास बुझानी है तो
पृष्ठ :112 मूल्य : 25/–

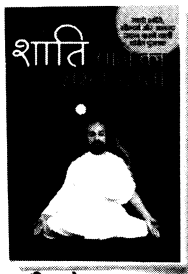

शांति पाने का सरल रास्ता
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/–

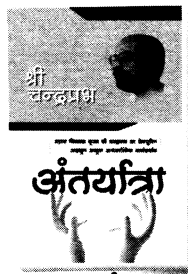

अंतर्यात्रा
पृष्ठ : 160 मूल्य : 30/–

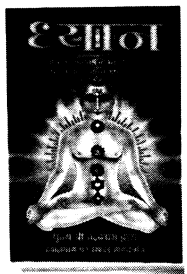

ध्यान
पृष्ठ : 160 मूल्य : 25/–

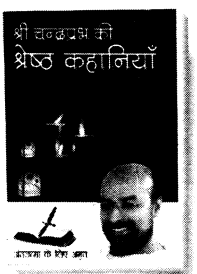

श्रेष्ठ कहानियाँ
पृष्ठ :128 मूल्य : 25/–

जिएं तो ऐसे जिएं
पृष्ठ : 128 मूल्य : 40/–

महाजीवन की खोज
पृष्ठ :160 मूल्य : 40/–

जागो मेरे पार्थ
पृष्ठ : 250 मूल्य : 45/–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शांति, सिद्धि और मुक्ति पाने का सरल रास्ता
पृष्ठ :176 मूल्य : 40/–

चिंता, क्रोध और तनाव मुक्ति के सरल उपाय
पृष्ठ : 160 मूल्य : 50/–

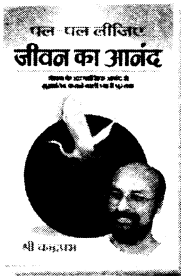

पल–पल लीजिए जीवन का आनंद
पृष्ठ :112 मूल्य : 25/–

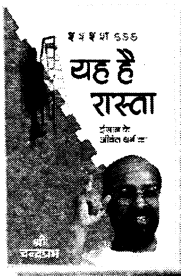

यह है रास्ता जीवंत धर्म का
पृष्ठ :120 मूल्य : 25/–

ऐसी हो जीने की शैली
पृष्ठ :160 मूल्य : 30/–

चार्ज करें ज़िंदगी
पृष्ठ : 96 मूल्य : 25/-

वाह! ज़िंदगी
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-

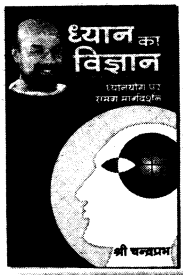

ध्यान का विज्ञान
पृष्ठ : 144 मूल्य : 30

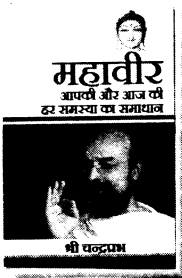

ावीर आपकी और आज की हर समस्या का समाधान
पृष्ठ : 300 मूल्य : 60/–

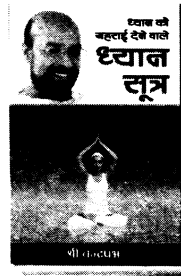

ध्यान को गहराई देने वाले ध्यानसूत्र
पृष्ठ : 192 मूल्य : 35/–

अब भारत को जगना होगा
पृष्ठ : 176 मूल्य : 35/–

न जन्म, न मृत्यु
पृष्ठ : 192 मूल्य : 35/–

न्यूनतम 400 – का साहित्य मंगवाने पर डाक खर्च संस्था द्वारा देय होगा। धनराशि SRI JITYASHA SHREE FOUNDATION के नाम से ड्राफ्ट बनाकर जयपुर के पते पर भेजें। उपरोक्त साहित्य प्राप्त करने हेतु अपना ऑर्डर निम्न पते पर भेजें।

श्री जितयशा श्री फाउंडेशन

बी–7, अनुकम्पा द्वितीय, एम. आई. रोड, जयपुर (राज.) 0141–2364737, 2375796

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शांति और साधना का धाम

संबोधि-धाम

जहाँ ध्यान और आनंद ही नहीं, विश्वास और प्रेम भी गढ़ा जाता है।

संबोधि-धाम प्रकृति और साधना की वह मनोरम स्थली है जहाँ क़दम रखते ही व्यक्ति को एक अनोखा ही अहसास होता है। उसे लगता है कि वह शहरी ज़िंदगी की भागदौड़ से दूर किसी शांत और दिव्य शक्ति के आभामंडल में आ चुका है। यहाँ सचमुच अपूर्व शांति, आनन्द और उत्साह का अनुभव होता है। जोधपुर रेलवे स्टेशन से मात्र 6 किलोमीटर दूर कायलाना की सुरम्य पहाड़ियों के एकांत में यह धाम हिमालय में स्थित मानसरोवर का आनंद देता है। ध्यान, साधना और सत्संग से व्यक्ति किस तरह सफल, संतुष्ट और मुक्त जीवन जी सकता है संबोधि-धाम उसी के मार्ग-दर्शन का केन्द्र है।

आइए अब हम प्रवेश करते हैं शांति और साधना की पावन भूमि संबोधि-धाम में। धाम का आधा क्षेत्रफल पहाड़ी भाग पर है और आधा समतल भूमि पर, ऐसा लगता है मानो यह कोई छोटा-सा कैलाश पर्वत हो। संबोधि-धाम के मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही हमारी पहली नज़र महावीर-पीठ पर पड़ती है, जो दूर से ही हम सबको अपनी ओर आकर्षित करती है। पेड़-पौधों की छाया में बनी इस पीठ पर भगवान् महावीर जयंती के पर्व पर विशेष अभिषेक समारोह सम्पन्न होता है।

सबसे पहले हम चलते हैं साधना-आराधना से जुड़े पहाड़ी भाग की यात्रा करने। इस ओर क़दम रखते ही हम पहुँचते हैं एक विशाल ग्राउंड में जो कि पहाड़ी भाग की तलहटी जैसा है। यहाँ हजार-पाँच सौ लोग आराम से बैठा करते हैं। यहाँ हरी-घास की लॉन है। इस तलहटी के शीर्ष पर है : कमल के भव्य आसन एवं हंस पर सवार ज्ञान और बुद्धि की देवी माँ सरस्वती की 21 फुट ऊँची विशाल प्रतिमा। पूरे देश भर में माँ सरस्वती की इतनी भव्य और विशाल प्रतिमा कहीं और नहीं है। प्रतिमा का शिल्प अत्यंत अनूठा और अद्वितीय है।

थोड़ा-सा ऊपर चढ़ते ही हम मुखातिब होते हैं गुरु-मंदिर से। यह वास्तव में पूज्य बापजी साहब गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी महाराज की स्मृति में निर्मित समाधि-मंदिर है। मंदिर छोटा-सा है, पर सर्वधर्म-सद्भाव की आबोहवा इसमें सर्वत्र व्याप्त है।

अब शुरू होता है साधना और आराधना के पड़ावों का क्रम। मध्य भाग की पहाड़ी पर स्थित है अनुपम और अनूठा अष्टापद मंदिर और दादावाड़ी। कमल के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भव्य आसन पर विराजित सभी प्रतिमाएँ बड़ी आकर्षक और लुभावनी हैं। यहाँ जालीनुमा तश्तरियों में उकेरी गई तीर्थंकरों की छवियाँ अपने आप में एक नया प्रयोग है। यहाँ सभी प्रतिमाएँ साधनारूप हैं। मंदिर का आभामंडल इतना चार्ज है कि मंदिर में क़दम रखते ही अन्तर्मन को सुकून मिलता है। मंदिर परिसर के नीचे के भाग में है दादावाड़ी और प्राकृतिक पहाड़ी पर बनी चौबीस तीर्थंकर टूंक जो हमें एक साथ चौबीस तीर्थंकरों के दर्शन करने का सौभाग्य प्रदान करती है।

संबोधि-धाम के उत्तुंग शिखर पर साधना-सभागार है। जहाँ ध्यान-साधना करते हुए व्यक्ति शांति और दिव्यता का अनुभव करता है। इस सभागार में एक साथ पाँच सौ लोग बैठकर साधना कर सकते हैं।

साधना हॉल के नीचे के भाग में निर्मित है: विमल कला मंदिर। यह स्थान सर्वधर्म सद्भाव का जीवंत प्रतीक है। यहाँ कला और स्थापत्य का अनोखा संगम लिये शिव की साधना, महावीर का कैवल्य, वर्षीतप पारणा, मीरा की भक्ति, महावीर की समता, बाहुबली का अहम् बोध और बुद्ध के वैराग्य की विशाल झाँकियाँ। इस कला मंदिर में तंत्र-मंत्र-यंत्र के हस्तकलात्मक चित्र अपने आपमें नई जानकारी देते हैं।

सचमुच यहाँ पहुँचकर इतना भव्यतम मनोरम वातावरण मिलता है कि नीचे उतरने को मन नहीं करता। आगे बना है साहित्य मंदिर और चिकित्सा केन्द्र। साहित्य मंदिर में है गुरुजनों का सम्पूर्ण साहित्य, कैसेट, सीडी, डीवीडी आदि। इस साहित्य मंदिर से ही श्री जितयशा श्री फाउंडेशन की साहित्यिक गतिविधियों का संचालन होता है। इसी साहित्य मंदिर के सामने बने जयश्री देवी मनस चिकित्सा केन्द्र में मन-मस्तिष्क के रोगों का इग्लैण्ड व जर्मनी से आयातित फूलों के अर्क के द्वारा चिकित्सा होती है और गुरु महिमा मेडिकल रिलीफ सोसायटी में मिलती है - गरीब और जरुरतमंद लोगों को 40 प्रतिशत की छूट पर दवाइयाँ।

चिकित्सा केन्द्र के दायीं तरफ कृष्ण-पीठ है, जो हमें शांति, माधुर्य और कर्मयोग की शिक्षा देती है।

सचमुच ऐसा वातावरण, ऐसा धाम और कहाँ जहाँ व्यक्ति एक बार आए तो जाने का मन नहीं करता। यहाँ जाति-पंथ-परंपरा का कोई भेद नहीं है। छत्तीस कौम के लिए यहाँ के द्वार खुले हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि गुरुजनों का माधुर्य, प्रेम और आदरभाव सबको अपनी ओर सम्मोहित करता है। सचमुच अद्भुत है। संबोधि-धाम जहाँ केवल ध्यान और साधना ही नहीं, अपितु विश्वास और प्रेम भी गढ़ा जाता है। सच में यह एक दिव्य साधना-स्थली है।

संबोधि-धाम, कायलाना रोड, जोधपुर (राज.) फो. 2060352

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म आखिर क्या है?

धर्म आखिर क्या है? यह बहुत ही विकट प्रश्न है। समय-समय पर इस रहस्यमयी सवाल के जवाब दिये जाते रहे हैं। फिर भी यह अनुत्तरित रहा है। महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी ने इस रहस्य पर से परदा उठाया है इस दिव्य पुस्तक में। उन्होंने भगवान महावीर के सूत्रों पर अमृत प्रवचन दिये हैं जिनका चिंतन, मनन और अनुशरण कर मानव दु:ख से मुक्त होकर धर्म-पथ पर अग्रसर हो सकता है। पूज्य श्री ललितप्रभ के संदेश धर्म के नाम इंसान को करीब लाते हैं उनकी नज़र में धर्म मानवता की मुंडेर पर मोहब्बत का जलता चिराग है।

जीवन की वर्तमान त्रासदियों से उबरने के लिए प्रस्तुत ग्रंथ किसी तट का काम करता है। धर्म हमारे जीवन की रोशनी बने, प्रेरणा बने, सुख-शांति पूर्वक जीने का आधार बने - यही धर्म पर दिये गये इन संदेशों का मर्म है।

महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर महाराज आज देश के नामचीन विचारक संतों में हैं। प्रभावी व्यक्तित्व, बूँद-बूँद अमृतघुली आवाज, सरल, विनम्र और विश्वास भरे व्यवहार के मालिक पूज्य गुरुदेव श्री ललितप्रभ मौलिक चिंतन और दिव्य ज्ञान के द्वारा लाखों लोगों का जीवन रूपांतरण कर रहे हैं। उनके ओजस्वी प्रवचन हमें उत्तम व्यक्ति बनने की समझ देते हैं। अपनी प्रभावी प्रवचन शैली के लिए देश भर के हर कौम-पंथ-परम्परा में लोकप्रिय इस आत्मयोगी संत का शांत चेहरा, सहज भोलापन और रोम-रोम से छलकने वाली मधुर मुस्कान इनकी ज्ञान-सम्पदा से भी ज्यादा प्रभावी है।

Rs. 30/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org 9329